" ओउम् "

# मानव शरीर विज्ञान

- मानव शरीर के प्रमुख 11 संस्थान
- कोशिका/ऊतक/अस्थि
- रक्त परिसंचरण तंत्र
- हृदय की रचना व क्रिया
- पाचन तंत्र की रचना व क्रिया
- श्वसन तंत्र- बाह्य/आन्तरिक
- वृक्क की सरंचना व कार्य
- मस्तिष्क की सरंचना व कार्य
- मेरूरज्जु की सरंचना व कार्य
- नेत्र/कर्ण/नासिका की सरंचना एवं कार्य
- जिह्वा एवं त्वचा की सरंचना व कार्य
- पीयूष ग्रन्थि
- एड्रिनल ग्रन्थि
- थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रन्थियां
- यौन ग्रन्थियां
- प्रतिरक्षा तंत्र: लसिका,प्लीहा,यकृत, थाइमस ग्रन्थि, अस्थि मज्जा
- प्रतिरक्षा प्रणाली के कार्य: सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता
  अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता
- एंटीबॉडी/ एण्टीजन्स

**REFERENCE BOOK :--BY-102, UTTRAKHAND OPEN UNIVERSITY**

सुझाव के लिए सम्पर्क करें।

निर्माणकर्त्ता

**शुभम बरवाला**

**मो. 9466613072**

www.facebook.com/शुभम बरवाला

shubhamjibarwala@gmail.com

पतंजलि चिकित्सालय एवं स्टोर
बरवाला (हिसार), हरियाणा

शुभम बरवाला

# मानव शरीर

हमारा शरीर अनेकों कोशिकाओं से मिलकर बना है। शरीर की सबसे छोटी इकाई 'कोशिका' होती है।

**कोशिका (cell) :–** प्रत्येक कोशिका एक तरल (जैली) पदार्थ से बनी है। उसे जीवद्रव्य कहते है। जीवद्रव्य के बीच में एक केन्द्रक होता है। जो जनन आदि क्रियाओं पर नियत्रंण रखता है। केन्द्रक में Genes होते है। ये R.N.A. और D.N.A. से मिलकर बनती है। ये जीन्स पैतृक गुणों के सवंहन का कार्य करते है। इनके द्वारा ही कोशिका अपने जैसी अन्य कोशिकायें उत्पन्न करती है। कोशिकाएं कुछ समय बाद नष्ट हो जाती है। तथा फिर पुनः नयी कोशिका का निर्माण होता है। कई कोशिकाएं मिलकर ऊतक का निर्माण करती है।

**ऊतक (Tissue) :** मनुष्य शरीर में भिन्न–2 कार्यो का सम्पादन अलग–2 प्रकार की कोशिकाएं करती हैं। एक ही प्रकार की बहुत सी कोशिकाएं मिलकर जो संरचना बनाती है वह उत्तक कहलाता है। बहुत से उत्तक मिलकर एक अंग विशेष का निर्माण करते है। और कई अंग मिलकर तंत्र (System) का निर्माण करते है।

कोशिका
↓
ऊतक
↓
अंग
↓
तंत्र (System)

**शरीर के विभिन्न संस्थान :–** हमारा शरीर 11 संस्थानों से मिलकर बना है। जो शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करते है।

1. **ज्ञानेन्द्रिय संस्थान :–** हमारे शरीर के वह अंग जिनसे हमें अपने चारों और के परिवेश का ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियों की संख्या 5 है। आँख, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा।

क) **आँख :–** आँख के कार्य सम्पादन में कार्निया, उपतारा, पुतली तथा रेटिना महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह देखने संबंधी संवेदना की अनुभूति कराती है।

ख) **कान :–** कान को तीन भागों में बाँटा गया है। बाह्य, मध्य, आंतरिक कान। बाह्य कान ध्वनि तरंगों को मध्य कान तक पहुचाँता है और मध्य कान यह तंरगों को आंतरिक कान तक पहुँचाता है।

ग) **नाक :–** गंध का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेन्द्रिय नाक में घ्राण सवेदंना का अहसास कराने वाले कोश होते है। यही कोश गंध युक्त पदार्थो में निकलने वाले सूक्ष्म वाष्पमय कणों से प्रभावित होकर संबंधित संवेदना को मस्तिष्क केन्द्रों के घ्राण शिरा तक पहुँचाते है। जिससे हमें गंध का अहसास होता है।

घ) **जीभ :–** जीभ हमें स्वाद का ज्ञान कराती है जो भोजन हम ग्रहण करते है वे लार में मिलकर जिव्हा के स्वाद तंतुओं के द्वारा स्वाद कोशों में पहुँचता है। वही स्वाद कोश उत्तेजना को स्वाद कलिकाओं तक पहुँचाते है। जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क की सहायता से विभिन्न स्वादों का अहसास कराते है।

ड़) **त्वचा :–** स्पर्श, ताप, शीत, दबाव तथा पीड़ा का ज्ञान कराती हैं।

2) **अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र :–**

मनुष्य शरीर का आधार अस्थि तंत्र हैं यह शरीर को आकार प्रदान कर आंतरिक अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। यह शरीर को कार्य करने तथा चलने फिरने योग्य बनाता है।

अस्थि तंत्र में 206 हडिड्यों से मिलकर बना है। उनके स्थान निम्नलिखित हैं–

कपाल में 4 दाएं तरफ 4 बाएं तरफ

कान में 3 दाएं तरफ 3 बाएं तरफ
चेहरे में 7 दाएं तरफ 7 बाएं तरफ
गले में 1 हड्डी होती है।
छाती के पिजरें में 1 हड्डी होती है जो
12 दाएं और 12 बाएं हड्डियों से जुड़ी होती है।
कन्धों में 2 दाएं तरफ 2 बाएं,
हाथों में 30 दाएं तरफ 30 बाएं तरफ,
रीढ़ में 13 दाएं तरफ 13 बाएं तरफ
कुल्हों में 1 दाएं तरफ 1 बाएं तरफ
टागों में 30 दाएं तरफ 30 बाएं तरफ।

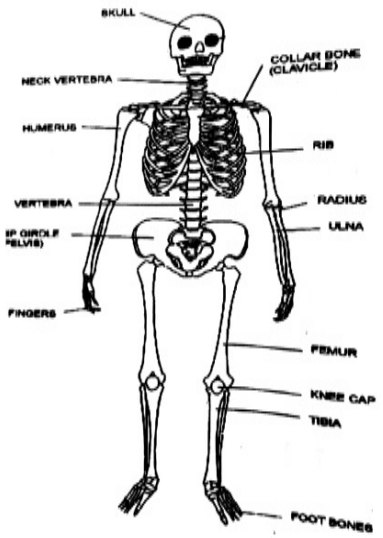


ये हड्डियां आपस में जुड़कर मजबूत ढ़ाँचे का निर्माण करती है। अस्थियों के विकास के लिए कैल्शियम, फास्फोरस जैसे खनिज लवण तथा विटामिन 'सी' और 'डी' आवश्यक होते है। शरीर की सबसे बड़ी हड्डी 'फीमर' है। यह जंघा में होती है। शरीर की सबसे छोटी हड्डी 'स्टेप्स' है। यह कान में होती है।

3) **मांसपेशी संस्थान या पेशीय संस्थान :–** मांस तथा मांसपेशियों के लसदार समूह को कहते हैं। मासपेशियाँ एक–एक मांससूत्र होती है या मांस का गुच्छा होती है। इसमें संकुचन एवं शिथिलन का विशेष गुण होता है। संकुचन के शिथिलन गुण के कारण ही हम अपने हाथ को सिर व अन्य शारीरिक अंगों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घुमा सकते है। मनुष्य शरीर में छोटी–बड़ी लगभग कुल 519 मांसपेशियां पाई जाती है। मांसपेशियां दो प्रकार की होती है।

क) **ऐच्छिक पेशी (Voluntary) :–** जिन मांसपेशियों पर हम अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकते है। जो मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती है। वे एच्छिक पेशी कहलाती है।

ख) **अनैच्छिक पेशी (Non Voluntary) :–** जो मांसपेशियां मनुष्य की इच्छानुसार कार्य नहीं करती है। वे अनैच्छिक पेशी कहलाती है जैसे हृदय, श्वसन संस्थान आदि।

4) **पाचन संस्थान :–** पाचन संस्थान के अंतर्गत मुख, अन्न नलिका, अग्न्याश्य, पक्वाश्य, क्लोम ग्रन्थि, पित्ताशय, यकृत, छोटी आँत, बड़ी आँत आते है। पाचन तंत्र विभिन्न खाद्य पदार्थो का पाचन कर शरीर के लिए उपयोगी बनाता है।

जब हम भोजन करते है। तो सबसे पहले मुख में उपस्थित लार भोजन में मिलती है। जो पाचन में सहायता करती है। आहार सबसे पहले आमाश्य में आता है। तब आमाश्य की दीवारों में मौजूद हाइड्रोक्लारिक अम्ल मिलकर भोजन में मिलता है। तत्पश्चात 3–5 घंटे में उसे पक्वाशय में भेज दिया जाता है। यहाँ पित्ताश्य से पित्त रस आकार मिलता है। इसके बाद भोजन छोटी आंत में जाता है। जहाँ सभी पोषक तत्वों का अवशोषण होता है। उसके बाद आहार बड़ी आंत में जाता है। जहाँ पानी व लवण का अवशोषण होता है। बचा हुआ पदार्थ मल के रूप में उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाला जाता है। मनुष्य शरीर को भोजन से शर्करा, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स आदि प्राप्त होते है। भोजन के पाचन में 14–18 घंटे का समय लग जाता है।

5) **श्वसन संस्थान :–** श्वसन संस्थान के अन्तर्गत श्वसन संबंधी यन्त्र, नाक, स्वरयंत्र, श्वसन नलिका व फेफड़े आते है। इस संस्थान का मुख्य कार्य दूषित रक्त को शुद्ध करना है। इस क्रिया में बाहरी वातावरण से शुद्ध प्राण वायु को ग्रहण किया जाता है। तथा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न $Co_2$ अशुद्धियों को शरीर से बाहर निकाला जाता है।

6) **मूत्रवाहक एवं मलत्याग संस्थान या उत्सर्जन तंत्र :–** उत्सर्जन तंत्र के अर्न्तगत त्वचा, वृक्क, फेफड़ें, मूत्राश्य, मलाश्य इत्यादि आते है। जो शरीर में अवशिष्ट पदार्थ व विजातीय तत्वों को शरीर से बाहर निकालने का कार्य करते है। उत्सर्जन तंत्र का मुख्य कार्य शरीर में पड़े दूषित पदार्थो को शरीर से बाहर निकालना है।

7) **रक्त परिवहन तंत्र (Circulatary System) :–** रक्त परिवहन तंत्र प्रमुख रूप से हृद्य और रक्त नलिकाओं से मिलकर बना है। रक्त वहिकाएं समस्त शरीर में फैली होती है। रक्त वहिकाएं रक्त संचरण का कार्य करती है। हृदय रक्त सचंरण की क्रिया का सबसे प्रमुख अंग है। यह नाशपाती के आकार का होता है। हृदय को शरीर का 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जाता है। क्योंकि हृदय की मांसपेशियों के द्वारा ही रक्त का परिसंचरण होता है। मनुष्य का हृदय दो भागों (बाये तथा दायें कोष्ठों) में बंटा होता है। ये दोनों भाग (ऊपरी व निचले) दो हिस्सों में बंटी होती है। इन दोनों हिस्सों के बीच कपाट होते है, जो एक ही और खुलते है। इनसे रक्त ऊपर के प्रकोष्ठ से आ तो सकता है, लेकिन वापिस नहीं जा सकता। ऊपर के दाएं बाएं प्रकोष्ठ ग्राहक कोष्ठ कहलाते है व नीचे के दाएं–बाएं कोष्ठ क्षेपक कोष्ठ कहलाते हैं। दाएं ग्राहक कोष्ठ में सबसे पहले अशुद्ध रक्त महाधमनी द्वारा आता है। यहां से रक्त दाएं क्षेपक कोष्ठ में जाता है। दाएं क्षेपक कोष्ठ से अशुद्ध रक्त फुफ्फुस धमनी द्वारा फेफड़ों में शुद्ध होने के लिए जाता है।

फेफड़ों से शुद्ध रक्त बाएं ग्राहक कोष्ठ में आता है। यहां से बाएं क्षेपक कोष्ठ में जाता है। तथा बाएं क्षेपक कोष्ठ से महाशिरा द्वारा समस्त शरीर में संचारित हो जाता है। इस तरह मनुष्य शरीर में रक्त परिसंचरण की क्रिया चलती है।

8) **अंतस्त्रावी तंत्र :–** इस तंत्र के अर्न्तगत अंतस्त्रावीं ग्रन्थियाँ आती है। जो हारमोन्स का स्त्राव हमारे रक्त में करती है। जिससें हारमोन्स सभी अंगों तक पहुँच जाते है।

**पीयूष ग्रन्थि :–** यह मस्तिष्क के निचले भाग के अग्रभाग में स्थित होती है। इस ग्रन्थि द्वारा कई हार्मोन्स निकल कर रक्त से मिलते है।

क) **थायराइड़ उत्तेजक हार्मोन्स (T.S.N.) :–** यह हार्मोन थायराइड़ के कार्यो जैसे आयोड़ीन को थायराइड़ हामोन्स में बदलने में सहयोग करता है।

ख) **एड्रीनोकार्टीकोट्राफिक हार्मोन (A.C.T.A.) :–** एड्रीनल ग्रन्थियों के विकास व उससे निकलने वाले हार्मोन पर नियंत्रण करता है।

ग) **वृद्धि हार्मोन (Growth Harmone) :–** यह हाइट बढ़ाने में मदद करता है। इसकी कमी पर हाइट कम रह जाती है।

9) **लसिका तंत्र :–** लसिका तंत्र के निर्माण में लसिका द्रव, लसिका कोशिकाएं एवं लसिका ग्रन्थियाँ सहायक होती है। लसिका द्रव छोटी–2 रक्त नलिकाओं से छन कर आया होता है। लसिका कोशिकायें ऊतकों के बीच में बारीक नलिकाओं के रूप में फैली होती है। ये ऊतकों से द्रव को एकत्रित कर लसिका वहिकाओं में भेजती है। लसिका गाढ़े या लिम्फनोड्स, छोटी व बड़ी दोनों आकार की हो सकती है। लसिका वाहिकाएं इनमें लिम्फ लाती है। इन गाठों में श्वेत रक्त कणिकाएं आती है। रक्त के लिये श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण भी लिम्फ गाठों में होता है। ये शरीर की सुरक्षा के लिए प्रतिपिण्ड़ों का निर्माण करते है।

10) **तंत्रिका तंत्र :–** तंत्रिका तंत्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह संस्थान शरीर के सभी संस्थानों पर नियंत्रण करता है। और उनकों नियमित भी करता है। इसमें मस्तिष्क, मेरूदण्ड़ में स्थित सुषुम्ना या मेरूरज्जु एवं इनसे निकलने वाली तंत्रिकाये आती है।

1. मस्तिष्क के दो प्रमुख भाग होते है।

(क) लघु मस्तिष्क (ख) वृहद् मस्तिष्क

क) लघु मस्तिष्क शरीर की विभिन्न पेशियों की गति पर नियंत्रण रखता है। शरीर की गति, चलना–फिरना आदि कार्यो का नियमन उनके द्वारा होता है।

ख) वृहद् मस्तिष्क पीड़ा, उष्णता, शीतलता, स्पर्श आदि का ज्ञान करवाता है। इसका दायां भाग शरीर के बाएं भाग पर नियत्रंण करता है।

2) **थायरॉइड ग्रन्थि :–** यह ग्रन्थि गर्दन के सामने नीचे की और स्थित होती है। थाइयॉयड़ ग्रन्थि 'थायरॉक्सिन' नामक हार्मोन का स्त्राव करती है। तथा ऊतकों की चयापचय क्रियाओं का नियमन करती है। थायरॉक्सिन के कम स्त्राव से अंगों में विकृति तथा अधिक स्त्राव से 'हायपर थायरोड़िज्म' नामक रोग हो जाता है।

3) **पैराथायराँइड़ ग्रन्थि (Parathyoid Gland) :–** यह ग्रन्थि थायरॉइड़ ग्रन्थि के पास उससे लगी हुई होती है। यह ग्रन्थि मटर के दाने के आकार की होती है, तथा इनकी संख्या 4 होती है, इनसे निकलने वाला हार्मोन पैराथारमोन शरीर में कैल्शियम तथा फास्फोरस का वितरण तथा चयापचयी क्रियाओं का नियमन करता है। इस हार्मोन की अधिकता से हड्ड़ियाँ कमजोर तथा गुर्दो में पथरी बनने लगती है। इसकी कमी से कैल्शियम की कमी हो जाती है।

4) **एड़रीनल ग्रन्थियाँ (Adrinal Gland) :–** ये ग्रन्थियाँ दोनों गुर्दो के ऊपर स्थित होती है। एड्रीनल से दो हार्मोन एड्रनलीन और नारएड्रेनलीन निकलते है।

5) **थाइमस ग्रन्थि :–** ये ग्रन्थि फेफड़ों के मध्य होती है। यह बच्चों में दो वर्षो तक बढ़ती है। उसके पश्चात् सिकुड़ कर छोटी हो जाती है।

6) **पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland) :–** ये ग्रन्थि लाल रंग की गुठली के आकार की होती है। जो मस्तिष्क के पश्च भाग में स्थित होती है। और बायां भाग शरीर के दाएं भाग पर नियंत्रण करता है। मस्तिष्क बुद्धि, विवेक, विचार, अनुभव इत्यादि का केन्द्र है। इन्द्रियों का बोध जैसे :– श्रवण, दृष्टि, गंध, स्पर्श, स्वाद आदि विभिन्न नाड़ियों के माध्यम से मस्तिष्क करवाता है।

नाड़ियों के कार्य विद्युत तारों के समान संदेशों का आदान–प्रदान करती है। ये तंत्रिकाएं या नाड़ियाँ समस्त शरीर में फैली होती है। इनमें से कुछ सीधे मस्तिष्क से निकलती है। जिन्हें मस्तिष्कीय कपालिक तंत्रिकाएं कहते है। इनकी संख्या 12 होती है। मेरुरज्जु से 31 जोड़े निकलती है। हमारे सम्पूर्ण शरीर का संचालन इन्हीं नाड़ियों द्वारा होता है।

11) **प्रजनन तंत्र :–** यह संस्थान प्रजनन अथवा सन्तानोत्पत्ति के लिए समस्त प्राणियों में आवश्यक है। स्त्री व पुरूषों में अलग–अलग तरह के प्रजनन अंग होते है। स्त्रियों के जनन अंग, ड़िम्ब ग्रन्थियाँ, ड़िम्ब वाहिनियाँ व गर्भाशय है, ये अंग श्रेणी गुहा के अन्दर स्थित होते है।

ड़िम्ब ग्रन्थि ड़िम्ब या अण्डे का निर्माण तथा वृषण शुक्राणुओं का निर्माण करते है। जब ड़िम्ब व शुक्राणु मिलते है। तब भ्रूण की रचना होती है। डिम्ब व शुक्राणु के आधे–आधे क्रोमोसोम (23) होते है। ड़िम्ब और शुक्राणु जब मिलते है, क्रोमोसोम्स पूरे (46) हो जाते है।

# कोशिका रचना एवं क्रिया

मानव शरीर के आधारभूत अव्वय को कोशिका कहते है। मानव शरीर कोशिकाओं का समूह मात्र है। हर कोशिका अपने आप में एक स्वतंत्र ईकाई है। परन्तु शरीर में यह अलग–2 कार्य करती है। यह सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) द्वारा ही देखी जा सकती है। मानव जीवन का प्रारम्भ एक कोशिका से होता है। माता के गर्भ में यह कोशिका विकसित एवं विभाजित होती है। और पूर्ण शरीर विकास इन्हीं के विकास का नतीजा है। मानव शरीर में लगभग 200 प्रकार की कोशिका है। हर कोशिका एक कोशिका भित्ति से ढ़की होती है। कोशिका का आकार 15–500 एम.एम. होता है। और एक व्यस्क का शरीर लगभग 100 ट्रिलियम कोशिकाओं का समूह है।

**कोशिका भित्ती (Plasma Menbrane)** :– कोशिका को वसा, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेड़ से बनी हुई लचकदार झिल्ली घेरे रहती है, जिसे कोशिका भित्ती कहते है। इस भित्ती से केवल कोशिका के लिए आवश्यक पदार्थ ही प्रवेश पा सकते है।

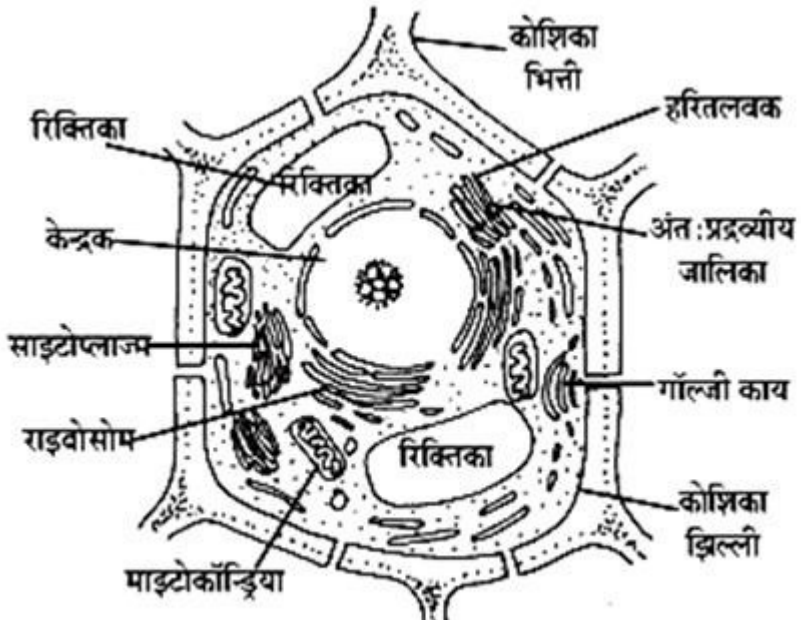


**जीव द्रव्य (Cytoplasm)** :– कोशिका भित्ती एवं नाभिक के बीच के द्रव्य को जीव द्रव्य कहते है। कोशिका का 55% हिस्सा इसी तरल से भरा होता है। जीव द्रव वह तरल है जिसमें कोशिकांग (Organells) डूबे रहते है।

**कोशिकांग (Organelles)** :– कोशिका के क्रियात्मक अंग है। यह अनेक प्रकार के है। इनके कार्य भी अलग–2 है।

क) **सेन्ट्रोसोम (Centrosome)** :– कोशिका विभाजन के समय महत्वपूर्ण कार्य करते है।

ख) **राइबोसोम** :– राइबोसोम प्रोटीन से बनते है। इनका कार्य कोशिका के लिए आवश्यक प्रोटीन बनाना है।

ग) **माइट्रोकॉन्ड्रिया** :– इसे कोशिका का विधुतग्रह भी कहते है। ये आक्सीकरण प्रक्रिया में ATP बनते है। जहाँ पर भी कोशिका को ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वहाँ पर कोशिका इन्हीं ATP को तोड़कर ऊर्जा प्राप्त कर लेती है।

घ) **लाइसोसोम (Lysosomes)** :– इन कणिकाओं का कार्य 'अन्तरकोशिका पाचन' का है। इनमें 40 अलग–अलग प्रकार के स्त्राव पाये जाते है। यह कोशिका आहार द्रव में पाचक स्त्राव करके आहार कणों को पचा देते है और

उन्हें ग्लूकोज, अमीनों एसिड़ आदि में तोड़ देते है। तभी यह पाचित अंश इनकी झिल्ली द्वारा अवशोषित कर कोशिका द्रव में छोड़ दिया जाता है। यह खराब या पुराने हो चुके कोशिका अंश को नष्ट करते है जिसे ओटोफेमी कहा जाता है।

**नाभिक (Nuclus) :–** यह कोशिका के बीच में स्थित रहता है और कोशिका के समस्त कार्यो को नियंत्रित करता है। इसके अन्दर जीव का **डी.एन.ए.** क्रामोजोम (Chromosomes) के रूप में उपस्थित रहता है। हर व्यक्ति का अपना अलग डी.एन.ए. होता है जो उसे माता–पिता से प्राप्त होता है। कोशिका अथवा शरीर के कार्य गति, मृत्यु आदि सभी इन नाभिक में मौजूद डी.एन.एन. द्वारा नियंत्रित क्रियायें है। नाभिक के अन्दर भी जीव द्रव भरा होता है। इसे (Nucleolus) कहते है।

## ऊतक

समान स्वरूप एवं समान कार्य वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहते है।

ऊतक के प्रकार निम्नलिखित है।

1) **तंत्रिका तंत्र ऊतक :–** इन ऊतकों द्वारा शरीर के तन्त्रिका तन्त्र का निर्माण होता हे। मस्तिष्क (Brain) तन्त्रिका नाड़ी (Nerves), सुषुम्ना (Spinal card) इससे निर्मित होते है। यह ऊतक न्यूरॉन (Neuron) नामक कोशिका से बनते है। इनका कार्य संवेदनाओं को ग्रहण करना और शरीर की मांसपेशियों, अंगों, स्त्रावी ग्रन्थियों को प्रेरित करना है।

2) **मांसपेशी तंत्र ऊतक :–** सम्पूर्ण शरीर में फैली और शरीर के अधिकांश भाग का निर्माण यह करती है। यही शरीर को गति प्रदान करती है। यह बाह्य अंगों के साथ–2 नसों, हृदय, पाचन तंत्र, श्वास नलिका आदि में भी मासपेशी तंत्रिय ऊतक होती है। इनका कार्य शरीर को और शरीरांगों को गति प्रदान करना है। शरीर में ऊष्मा उत्पत्ति का कार्य भी यही करती है।

3) **अस्थि तंत्र ऊतक :–** अस्थियाँ (Bones), संधि (Joints), उपस्थि (Cartilag) मिलकर अस्थि तंत्र की रचना करते है। इनका कार्य शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करना और शरीर को एक स्थिर स्वरूप प्रदान करना है। अस्थि की कोशिका को आस्टियासाइट (Osteouste) कहते है।

4) **उपकला तंत्र ऊतक :–** यह ऊतक शरीर के और प्रत्येक अंग के बाहय और भीतरी भाग को ढ़के रहती है। इनका कार्य सुरक्षा का है। यही स्त्रावी ग्रन्थियों का भी निर्माण करती है।

5) **संयोजक ऊतक :–** यह शरीर में सबसे ज्यादा मात्रा में पाये जाने वाला ऊतक है। यह अन्य ऊतकों को आपस में जोड़कर रखने, स्थिरता प्रदान करने, खाली स्थानों को भरना, आंतरिक अंगों की सुरक्षा एवं रक्त आदि द्वारा अन्य ऊतकों के पोषण का कार्य भी करती है।

6) **स्त्रावी ग्रन्थि ऊतक :–** स्त्रावी ग्रन्थि उस कोशिका या कोशिका समूह को कहते है जो शरीर के लिए आवश्यक क्रियाओं सम्पादन के लिए जरूरी तत्वों का स्त्राव करती है। यह स्त्राव नलिकाओं द्वारा रक्त में छोड़ा जाता है। शरीर में दो प्रकार की स्त्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती है।

(क) बहिस्त्रावी ग्रन्थि (ख) अन्तस्त्रावी ग्रन्थि

7) **रूधिरीय ऊतक (Blood) :–** यह एक तरल संयोजी ऊतक है। यह कोशिका द्रव एवं प्रोटीन, मिनरल आदि

से बना है। इस द्रव भाग को प्लाजमा कहते है। इसमें शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व घुले रहते है। इसमें तीन प्रकार की कोशिका पाई जाती है।

(क) लाल रक्त कण (Red Blood Cells)

(ख) श्वेत रक्त कण (White Blood Cells)

(ग) प्लेटलेट्स (Platelets)

यह शरीर में परिभ्रमण करता रहता है और शरीर की जीवाणु से रक्षा, पोषण, ऊतक, मल का गुर्दो आदि के द्वारा निष्कासन का कार्य करता है।

## रक्त परिसंचरण तंत्र

**शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव पदार्थ भरा हुआ है, उसी को रक्त कहते है।** रक्त का एक नाम रूधिर भी है। रूधिर को जीवन का रस कहा जा सकता है। जब रक्त शरीर में सचंरण करता रहता है। तभी तक प्राणी जीवित रहता है। यह एक तरल संयोगी ऊतक होता है। मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5–6 लीटर होती है। शरीर के भार का 20वाँ भाग रक्त होता है। रक्त परिसंचरण तंत्र में मुख्य रूप से हृदय, फेफड़े, धमनी व शिरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

**रक्त के अवयव :–** रक्त का PH 7.3 से 7.5 होता है। रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.065 होता है। मनुष्य शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री फा.हा. रहता है। परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। रक्त का स्वाद 'नमकीन' सा होता है। इसका कुछ अंश तरल व कुछ गाढ़ा होता है।

(क) प्लाज्मा (Plasma) (ख) रक्त कणिकाये (Blood Corpuscles)

क) **प्लाज्मा :–** यह रक्त का तरल अंश है। इसे 'रक्त–वारि' भी कहते है। यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 1.026 से 1.029 तक होता है। रक्त प्लाज्मा में 90% पानी होता है। यह रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर–अधर ले जाने का कार्य करता है। तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इनकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका 'फाइब्रोनोजिन' रक्त स्त्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है, जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है।

i) **प्लाज्मा प्रोटीन :–** प्लाज्मा प्रोटीन की मात्रा लगभग 300 से 350 ग्राम होती है व विभिन्न प्रकार के प्रोटीन होते है जैसे :– एल्बूमिन, ग्लोब्यूरमिन, प्रोथ्राम्बिन, पाइब्रिनोजन आदि।

ii) **उत्सर्जी पदार्थ :–** कोशिकाओं से निकाले गए उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया व यकृत कोशिकाओं से यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रिटीनीन आदि जिसे रक्त से किड़नी ग्रहण करती है तथा इनका निष्काष्न होता है।

2) **रक्त–कणिकाएँ :–** ये तीन प्रकार की होती है।

(i) लाल रक्त कण (ii) श्वेत रक्त कण

(iii) प्लेटलेट्स

i) **लाल रक्त कण :–** लाल रक्त कणों को (Erythrocytes) कहा जाता है। रूधिर में 99% RBC होते है। ये आकार में गोल, मध्य में मोटे और चारों किनारों पर पतले होते है। इनका व्यास 1/3000 इंच होता है। इनका व्यास आवरण रंगहीन होता है।

इसके भीतर एक तरल द्रव भरा होता है जिसे 'हीमोग्लोबिन' कहते है। हीम (Heam) अर्थात लोहा तथा ग्लोबिन (Globin) अर्थात् एक प्रकार का प्रोटीन इन दोनों से मिलकर 'हीमोग्लोबिन' शब्द बना है। 'हीमोग्लोबिन' की उपस्थिति के कारण ही इन रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

हीमोग्लोबिन की सहायता से ये रक्त फेफड़ों से आक्सीजन (Oxygen) अर्थात् प्राण वायु प्राप्त करके उसे शुद्ध रक्त के रूप में सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते रहते है। जिसके कारण शरीर को कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है।

ii) **श्वेत रक्त कण :–** श्वेत रक्त अणुओं को (Leucocytes) भी कहते है। ये रक्त कण प्रोटोप्लाजम द्वारा वाहक निर्मित है। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। आवश्यकतानुसार इनके आकर में परिवर्तन भी होता रहता है। इनका रंग सफेद होता है। लाल रक्त कणों की तुलना में इनका अनुपात प्रायः 1:500 का होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त की 1 बूंद में इनकी संख्या 5000से 8000 तक पाई जाती है। इनका निर्माण अस्थि मज्जा (Bone Marrow), लसिका ग्रंथियाँ (Lymph Gland) तथा प्लीहा (Spleen) आदि अंगों में होता है। इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। दिन में कई बार इनकी संख्या में घट–बढ़ होती रहती है। इनका आकार भी थोड़ी–2 देर में बदलता रहता है।

इन श्वेत कणों का कार्य शरीर की रक्षा करना है। बाहरी वातावरण से शरीर में प्रविष्ट होने वाले विकारों तथा विकारी–जीवाणुओं के आक्रमण के विरूद्ध ये रक्षात्मक ढ़ंग से युद्ध करते है। तथा उनके चारों और घेरा डालकर, उन्हें नष्ट कर ड़ालते है। इसी कारण इन्हें शरीर–रक्षक (Body Guard) भी कहा जाता है। यदि कभी इनकी पराजय हो जाती है तो शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। लेकिन उस परिस्थिति में भी ये शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाली बीमारी के जीवाणुओं से युद्ध करते ही रहते है। तथा अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते है। यदि रक्त में श्वेत कण का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो शरीर की मृत्यु हो जाती है। सक्रांमक रोगों के आक्रमण के समय इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती रहती है। न्यूमोनिया होने पर इनकी संख्या में डेढ़ गुणा वृद्धि तक होती पाई गयी है। श्वेत कणों की बहुलता को (Leucocytosis) तथा अल्पता को (Leucopening) कहा जाता है।

iii) **प्लेटलेट्स :–** प्लेटलेट्स को बिम्बाणु भी कहा जाता है। इनकी उत्पति अस्थि–रक्त मज्जा (Red Bone Marrow) में लोहित कोशिकाओं द्वारा होती है। इनकी संख्या लगभग 250000 (150000 से 350000) तक होती है। इनकी 10% संख्या प्रतिदिन बदलती रहती है और रक्त में नवीन (नयापन) आती रहती है। उनके प्रमुख कार्य है।

1) रक्त कोशिकाओं के endothelium की क्षति की क्षतिपूर्ति।
2) अवखण्ड़ित होने पर हिस्टीमीन की उत्पत्ति करना।
3) रक्त स्त्राव में रक्त स्कन्दन (जमाना) की क्रिया करता है।

## रक्त के कार्य :–

1) आहार–नलिका में भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करना।
2) फेफड़ों से ऑक्सीजन लेकर उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना।
3) शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाइऑक्साइड को अपने साथ लेकर शरीर से बाहर निकालने में मदद करना।
4) शरीर में ग्रन्थियों द्वारा होने वाले अन्तः स्त्रावों (Harmones) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागो में पहुँचाना।
5) सम्पूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखना।
6) बाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षा प्रदान करना।
7) रक्त टूटी–फूटी तथा मृत कोशिकाओं को यकृत और प्लीहा में पहुँचाता है, जहाँ वे नष्ट हो जाती है।

8) रक्त अपने आयतन में परिवर्तन लाकर ब्लैड़ प्रेशर पर नियन्त्रण रखता है।

9) रक्त जल–सवहंन के द्वारा शरीर को नम्र व मुलायम रखता है।

10) रक्त शरीर के अंगों की कोशिकाओं की मरम्मत करता है। तथा कोशिकाओं के नष्ट हो जाने पर उनका नव निर्माण भी करता है।

11) रक्त शरीर के विभिन्न भागों से व्यर्थ पदार्थो को उत्सर्जन अंगों तक ले जाकर उनका निष्कासन करवाता है।

**रक्त सचंरण में सहायक प्रमुख अवयव :–**

हृदय, धमनियां (Artieties), शिराऐं (Veins), फेफड़े, कोशिकाएं तथा लसिकाऐं, महाधमनी तथा महाशिरा।

## हृदय (Heart)

**हृदय :–** रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Strofed) एवं अनैच्छिक मांसपेशी ऊतकों द्वारा होता है। यह बाएं फेफड़ों के बीच कुछ पीछे की और स्थित होता है। इसका ऊपरी भाग निम्न भाग की अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे 'हृदयावरण' कहते है। उस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है। जिसके कारण हृदय का ऊपरी भाग आर्द्र बना रहता है।

हृदय का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग चार भागों में विभक्त रहता है। ऊपर–नीचे, दाएं–बाएं चार प्रकोष्ठ होते है। ऊपर के दाये–बाये हृदय कोषों को 'ग्राहक कोष्ठ' कहा जाता है व नीचे के दाये–बाये हृदय को 'क्षेपक कोष्ठ' कहते है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए (दाएं व बाएं) दोनों और एक–2 छेद रहता है। तथा इन छेदों में एक–एक कपाट (Valve) रहता है। ये कपाट एक ही और इस प्रकार से खुलते है कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में आ सकता है लेकिन वापिस नहीं जा सकता।

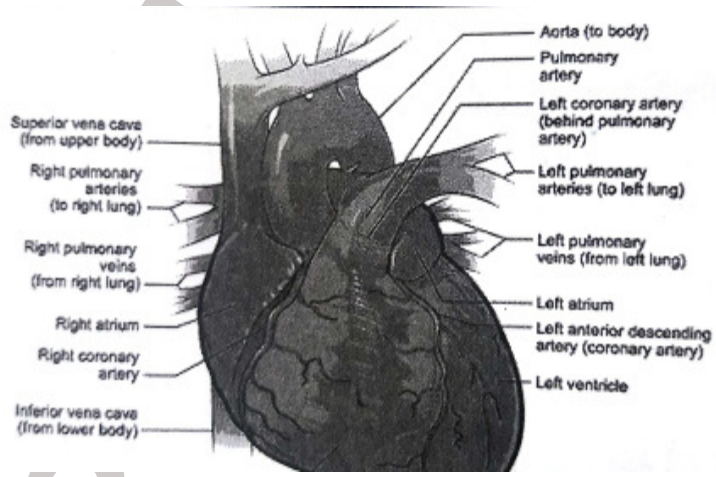


इनके ग्राहक कोष्ठों का काम 'रक्त को ग्रहण करना' तथा क्षेपक कोष्ठो का काम 'रक्त को निकालना है' दायीं और हमेशा अशुद्ध रक्त तथा बायीं और शुद्ध रक्त से भरा रहता है।

**हृदय को 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जाता है।** शरीर में रक्त–संरचण धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती है तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती है। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है। शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है। उन्हें धमनी कहते है। अशुद्ध रक्त का रंग बैंगनी होता है। उन्हें वहन करने वाली नलिकाओं को 'शिरा' कहते है।

**हृदय की कार्य प्रणाली :–** शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त 'महाशिरा' द्वारा दायें ग्राहक कोष्ठ में आता है। रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है। तथा एक दबाव के साथ रक्त को दायें क्षेपक कोष्ठ में फेंक देता है। तथा कपाट इसके बाद बन्द हो जाता है। फिर ज्यों ही दायां क्षेपक कोष्ठ में रक्त आता है, त्यों ही वह रक्त को पल्मोनरी धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। फेफड़ों में रक्त शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त फेफड़ो से पल्मोनरी शिरा द्वारा बायें ग्राहक कोष्ठ में भेज दिया जाता है। इसके पश्चात यह रक्त एक दबाव के साथ बाये क्षेपक कोष्ठ में आ जाता है फिर जब बायां क्षेपक कोष्ठ भरकर सिकुड़ने लगता है तब शुद्ध रक्त महधमनी द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।

1) **धमनियॉ (Arteries) :–** इनमें शुद्ध रक्त बहता है। ये रक्त नलिकाएँ लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित होती है। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती है।

2) **शिराये (Veins) :–** इनमें अशुद्ध रक्त बहता है उसकी नलिकाऐ पतली होती है इनकी दीवारे पतली तथा कमजोर होती है, जो झिल्ली की बनी होती हैं इन पर मांस का आवरण नहीं रहता।

3) **कोशिकाएं तथा लसिकाऐ (Capillaries) :–** अत्यन्त महीन शिराओं को, जो एक कोशिका वाली दीवार में भी प्रविष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। जब रक्त कोशिकाओं में बहता है तो उनकी पतली दीवारों पर उसका कुछ लाल भाग होता है। इस तरल पदार्थ को 'लसिका' कहते है।

4) **फेफड़े :–** फेफड़े रक्त परिसचंरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। फुफ्फुसों में हृदय द्वारा भेजे गए रक्त का आक्सीजन द्वारा शुद्धिकरण होता है। यहां से आक्सीजन युक्त रक्त को पल्मोनरी धमनी द्वारा वापिस हृदय में भेज दिया जाता है।

# पाचन तन्त्र

**हम** जो भी भोजन करते है वह तभी हमारे लिए उपयोगी होता है। जब हम उस भोजन का पाचन कर ऊर्जा प्राप्त कर सके। भोजन का पाचन करने का जो कार्य है, वह पाचन तन्त्र द्वारा किया जाता है। पाचन की प्रक्रिया एक रासायनिक एवं यान्त्रिक प्रक्रिया है। जिसमें भोजन के दीर्घ अणु टूटकर सूक्ष्म अणुओं में विभक्त हो जाते है। सूक्ष्म अणुओं का अवशोषण आतों में होकर वह शरीर की कोशिकाओं को ऊर्जा प्रदान करता है।

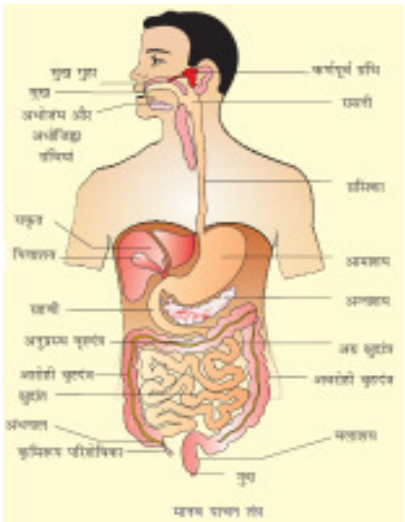

1) **मुख (Mouth) :–** मुँह पाचन तन्त्र का प्रमुख अंग है। इसके दो अंग है। पहला भाग (Buccal Cavity) जो बाह्य रूप से होठ, गाल तथा अन्दर से दांत तथा मसूड़ो में विभक्त रहता है। दूसरा भाग ग्रसणी में खुलता है, जहाँ रसस्त्रावी ग्रन्थियाँ होती है। जीभ, तालु तथा दॉत ये सब मुख के भीतर ही रहने वाले अव्यव है।

**ग्रसनी :–** मुख गुहा के पीछे के भाग को ग्रसनी कहते है। ग्रसनी के श्वास तथा पाचन संस्थान का मार्ग शुरू होता है। श्वास प्रणाली के मार्ग को (Trachea) तथा पाचन संस्थान के मार्ग को ग्रासनली (Oesaphagus) कहते है। हम जो भी भोजन को चबाते है वह ग्रसनी के द्वारा ही ग्रासनली में पहुँचाता है। इसकी लम्बाई 4 से 6 ईंच तक होती है। ग्रसनी के तीन विभाग होते है।

क) **नासाग्रसनी :–** नसिका के पीछे वाला भाग जहाँ से रबड़ नेति को पकड़कर खींचा जाता है।

ख) **मुख ग्रसनी :–** जहां पर जीभ की मूल है। इसकी भितियों में टॉन्सिल रहते है।

ग) **स्वरग्रसनी :–** यह वह भाग है जो आहार नाल में खुलता है।

**ग्रासनली :–** जिस नलीं के द्वारा भोजन अमाशय में पहुँचता है। ग्रासनली गले से आरम्भ होती है, जो लगभग 10–15 ईंच तक लम्बी होती है। इसमें कोई हड्डी नहीं होती।

**अमाशय :–** यह नाशपती के आकार का एक खोखली थैली जैसा अवयव है। अमाशय पाचन संस्थान का सबसे चौड़ा भाग है। इसका एक भाग ग्रासनली तथा एक भाग छोटी आँत के पहले भाग ग्रहणी पर खुलता है। अमाशय को पाकस्थली भी कहा जाता है। इसमें कई ग्रन्थियाँ होती है। इन ग्रन्थियों से पेप्सिन तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड़ के स्त्राव होते है। इन ग्रन्थियों को पेप्सिन ग्रथियाँ भी कहा जाता है। पाकस्थली का मध्यभाग मासपेशियां द्वारा निर्मित होता है। खाये हुए पदार्थ के मांसपेशियों में पहुँचते ही इसकी सब पेशियाँ एक के बाद एक संकुचित होने लगती है। इस क्रिया के कारण खाया हुआ पदार्थ चूर–चूर होकर लेई जैसा रूप ग्रहण कर लेता है। पाकस्थली के अन्तिम तीसरे स्तर पर लसिका ग्रन्थियाँ होती है। जो पाचक रसों का स्त्राव करती है।

अमाशय 24 घंटे में लगभग 5–6 लीटर रस निकालता है। इसमें भोजन प्रायः 4 घंटे तक रहता है। इसमें लगभग 1.5 कि.ग्रा. भोजन समा सकता है। परन्तु कई लोगों में इसकी क्षमता बहुत अधिक पाई जाती है।

**छोटी आंत :–** छोटी आंत लगभग 6–7 मीटर लम्बी होती है। छोटी आंत के तीन विभाग होते है।

क) पक्वाशय/ग्रहणी (Duodenum)

ख) मध्यान्त्र (Jejunum)

ग) शेषान्त्र (Illeum)

क) **पक्वाशय :–** अमाशय के अंत के भाग को पक्वाशय कहते है। यह 19 इंच लम्बा व आकार में 'C' अक्षर जैसा होता है। पक्वाशय के भीतर पित्त वाहिनी तथा अग्न्याश्य के द्वार खुलते है। जिनसे निकले स्त्राव पित्तरस व क्लोम रस आकर मिलते है। जिनमें मुख्यतः चार विशेष पाचक रस होते है।

(1) ट्रिप्सीन (2) एमिलौप्सीन

(3) स्टीप्सीन(4) दुग्ध परिवर्तक रस

ख) **जेजुनम (Jejunum) :–** पक्वाश्य को छोड़कर यह छोटी आंत का 2/5 भाग होता है। लगभग 8–10 फीट। इस भाग पर छोटे–2 रसांकुर होते है। जो भोजन का अवशोषण करते है।

ग) **जेजुनम इलियम (Illeum) :–** यह छोटी आँत का अन्तिम भाग है जो बड़ी आँत के प्रथम भाग (Ascending Colon) से चिपका रहता है। यह लगभग 3 मीटर लम्बा होता है। यह संकुचित हुए भोज्य पदार्थो को वापस जाने से रोकता है।

**बड़ी आँत :–** छोटी आँत जहाँ समाप्त होती है वहीं से एक बड़ी आँत आरम्भ होती है। यह छोटी आँत से अधिक चौड़ी होती है तथा लगभग 5–6 फुट लम्बी होती है। इसका अन्तिम डेढ़ से 2 ईंच का भाग ही मलद्वार अथवा गुदा कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 ईंच लम्बे भाग को मलाशय कहते है। छोटी आँत की तरह ही बड़ी आँत में भी कृमिवत् आकुंचन होता है। इस गति के कारण छोटी आँत से आये हुए आहार रस के जल भाग का शोषण होता है। यहाँ पर छोटी आँत से आये हुए कुछ प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का भी अवशोषण होता है।

अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी आँत में 400 सी.सी. पानी का शोषण होता है। यहाँ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है। तथा गाढ़ा भाग विजातीय द्रव्य के रूप में मलाशय से होता हुआ मलद्वार से बाहर निकल जाता है।

**मलाशय :–** यह बड़ी आँत के सबसे नीचे थोड़ा फैला हुआ लगभग 12 से 18 से.मी. लम्बा होता है। मलाशय के म्यूकोशा में शिराओं का एक जाल होता है। जब ये फुल जाती है तो इनमें से रक्त निकलने लगता है। जिसे अर्श या बवासीर कहा जाता है।

**गुदा :–** गुदा पाचन संस्थान का अन्तिम भाग है। इसी भाग से मल का निष्कासन होता है।

## पाचन तंत्र के सहायक अंग :–

1) **लार ग्रन्थियाँ :–** मानव शरीर में तीन प्रकार की लार ग्रन्थियाँ पाई जाती है।

क) **कर्ण मूल ग्रन्थियाँ (Parotid Gland) :–** कानों के भीतरी भाग में नीचे की और स्थित होती है। जो मुख में जल, लवण व टायलिन (Tilene) का स्त्राव करती है। टायलिन नामक रस (Carbohydrate) का पाचन करता है।

ख) **अधोहनुज ग्रन्थियाँ (Submandibolar Gland) :–** यह मुख के निचले जबड़े की और 1–1 स्थित होती है। इन ग्रन्थियों में लवण, जल एवं म्यूसीन का स्त्राव होता है।

ग) **अवजिही ग्रन्थियां (Sublingual Gland) :–** मुख के तल में जिहवा के थोड़ी नीचे की और स्थित होती है।

घ) **अग्न्याश्य (Pancreas) :–**

इसमें से क्लोम रस (Pancreatic Juice) निकल कर आँतों में जाता है। क्लोम रस में मौजूद श्वेतसार विश्लेषक की सहायता से श्वेतसार से शर्करा का निर्माण होता है। इसमें मौजूद ' $\beta$ ' बीटा Cells 'Insuline' का स्त्राव करते है। जो रक्त में शुगर को कंट्रोल करता है। यह एक मात्र ऐसी ग्रन्थि है जो एन्जाइम्स और हॉर्मोन्स दोनों का स्त्राव करती है।

**यकृत :–** यह मनुष्य के शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है। यह उदर में दायीं और वक्षों के नीचे स्थित होती है। यकृत की लम्बाई 9 ईच, चौड़ाई 10 ईच तथा भार लगभग 50 ओंस होता है। इसका रंग कत्थई होता है। यह ऊपर छूने में मुलायम तथा भीतर से ठोस होता है। यह 24 घण्टे में लगभग 550 ग्राम पित्त रस (Bile) तैयार करता है। यकृत में स्थित पित्ताशय (Gall Bladder) पाचन क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पित्ताशय का आकर एक नाशपती के समान खोखली थैली जैसा होता है। यह थैली यकृत के भीतर रहती है। इसके अन्दर से निकली नली (Crystic Duct) यकृत नली में जाकर मिल जाती है। इस प्रकार पित्त प्रणाली (Bile Duct) का निर्माण होता है।

## पाचन क्रिया

हम जो कुछ भी खाते है। वह सर्वप्रथम मुँह में पहुँचता है। वहाँ दांतों द्वारा उसे छोटे–छोटे टुकड़ों में कर दिया जाता है। मुँह की ग्रन्थियों से निकलने वाला लार नामक एक स्त्राव उस कुचले भोजन को चिकना बना देता है। इस लार में म्यूसिन व टाइलिन नामक रस भी होते है। जो भोजन पचाने में सहायता करते है। जब आहार अमाशय में पहुँचता है उस समय आमाशय की ग्रन्थियों से एक गैस्ट्रिक स्त्राव (Gastric Juice) निकलता है। जो एक तेजाब की तरह होता है। यह आहार को गला कर लेई के रूप में बदल देता है। जिसके कारण वह सुपाच्य हो जाता है। अमाशय में पेप्सीन नामक एन्जाइम प्रोटीन का पाचन करता है। अमाशय के लेई रूपी आहार पक्वाश्य में पहुँचता है। यहां यकृत से पित्त रस व अग्न्याश्य का (Pancreatic Juice) उसमें मिलता

है। इन रसों के सयोंग से भोजन घुलनशील वस्तु के रूप में बदल जाता है। आहार के पचने का अधिकांश कार्य अमाशय तथा पक्वाश्य में ही होता है। तत्पश्चात वह छोटी आंत में होता हुआ बड़ी आँत में पहुँचता है। आतों की मांसपेशियां क्रमश फैलती तथा सिकुड़ती हुई भोजन को आगे की और बढ़ाती है। उसे पेरीस्टालटिक गति (Peristaltic Moment) कहते है। बड़ी आंतों में जल का अवशोषण हो जाने के बाद भोजन का सार द्रव भाग रक्त में मिल जाता है व ठोस भाग मल के रूप में बाहर निकल जाता है। भोजन के सार भाग का अवशोषण दो प्रकार से होता है।

क) रक्त नलिकाओं के द्वारा

ख) लसिका नलिकाओं द्वारा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा 40% चर्बी का शोषण रक्त नलिकाओं द्वारा होता है। प्रोटीन का शोषण मासपेशियों द्वारा होता है।

# श्वसन तंत्र

**बाह्य श्वसन तंत्र :–** बाह्य श्वसन तंत्र के अन्तर्गत बाह्य वातावरण से वायु लेकर वायु के फेफड़ों तक पहुँचने की सरंचना का वर्णन आता है। इसके अन्दर नासिका, ग्रसनी, स्वरयंत्र, श्वासनली, श्वसनी, वायुकोष एवं फेफड़ों की सरंचना का वर्णन आता है।

**अन्त: श्वसन तन्त्र:–** अन्तः श्वसन तन्त्र के अन्तर्गत फेफड़ों में गैसों का आदान–प्रदान, रक्त द्वारा कार्बन डॉइआक्साइड का परिवहन व फेफड़ों में कार्बन डाइऑक्साइड – आक्सीजन का विनियम की क्रिया का वर्णन आता है।

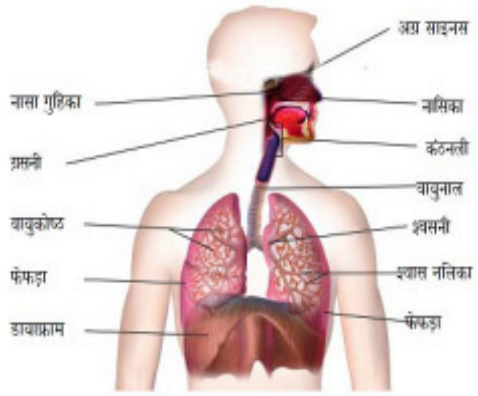


श्वास के माध्यम से आक्सीजन आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुँचती है। उस क्रिया के अभाव में ऑक्सीजन आन्तिरक कोशिकाओं तक नहीं पहुँच पाती व कोशिका में ऊर्जा उत्पति की क्रिया (ग्लूकोज का आक्सीकरण) नहीं हो पाता, परिणामस्वरूप ऊर्जा के अभाव में ये कोशिकाएं मरने लगती है। शरीर विज्ञान के अनुसार यदि चार मिनट तक श्वसन क्रिया नहीं होती तो मस्तिष्क व हृदय की कोशिकाएँ मरने लगती है।

**श्वसन तंत्र की सरंचना :–** मनुष्य में फेफड़ों द्वारा श्वसन होता है। ऐसे श्वसन को फुफ्फुसीय श्वसन कहते है। जिस मार्ग से बाहर की वायु फेफड़ों में प्रवेश करती है तथा फेफड़ों से कार्बन–डाई–आक्साइड बाहर निकलती है। उसे श्वसन मार्ग कहते है।

श्वसन तंत्र का निर्माण करने वाले अंग निम्नलिखित है।

(क) नासिका एवं नासिका गुहा
(ख) ग्रसनी
(ग) स्वरयन्त्र
(घ) श्वासनली
(ड़) श्वसनी
(च) वायुकोष
(छ) फेफड़े
(झ) डायाफ्राम

ये सभी अंग मिलकर श्वसन तंत्र बनाते है। इसके रूक जाने पर कुछ ही मिनटों में मृत्यु हो जाती है।

क) **नासिका एवं नासिका गुहा :–** मानव श्वसन तंत्र का प्रारम्भ नासिका से होता है। नासिका के छोर पर दो छिद्र होते है। नासिका एक उपास्थिमय (Cartilcgeous) सरंचना है। नासिका के अन्दर का भाग नासिका गुहा कहलाता है। इस नासिका गुहा में संवेदी नाड़िया पायी जाती है। जो गन्ध का ज्ञान कराती है। इसी स्थान (नासा मार्ग) के अन्दर श्लेष्मक ग्रन्थियां होती है। जिनसे श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है। नासिका गुहा के अग्र भाग में रोम केशों का एक जाल पाया जाता है।

ख) **ग्रसनी :–** नासिका गुहा आगे चलकर मुख में खुलती है। यह स्थान ग्रसनी कहलाता है। यह तीन भागों में बटी होती है।

(i) नासाग्रसनी (Nossopharynx)
(ii) मुखग्रसनी (Oropharynx)
(iii) स्वरयंत्र ग्रसनी (Larynigospharynx)

i) **नासाग्रसनी :–** यह नासिका के पीछे और कोमल तालु के आगे वाला भाग है। जहां नासिका के नासाछिद्र खुलते है। यहाँ से दो श्रावणीय नलिकाएं कानों में जाती है।

ii) **मुखग्रसनी :–** यह भाग तालु के नीचे से कंठच्छद तक होता है। इस भाग से श्वास एवं भोजन दोनों गुजरते है।

iii) **स्वरयंत्र ग्रसनी :–** यह कंठ के पीछे वाला भाग जो ग्रासनली से जुड़ा होता है। उसमें दो छिद्र होते है। पहला भोजन नली का छिद्र, दूसरा श्वास नली का द्वार होता है।

ग) **स्वरयंत्र की रचना एवं कार्य :–** स्वरयंत्र ग्रसनी के आगे का बड़ा भाग स्वरयंत्र कहलाता है। इसी स्थान पर थायराइड़ एवं पैराथायराइड़ नामक अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ उपस्थित होती है। यह गले का उभरा हुआ स्थान होता है। इसी स्थान में संयोजी ऊतक से निर्मित वाक रज्जू या स्वर रज्जू पाये जाते है।

**कार्य :–** स्वरयन्त्र ऐसा श्वसन अंग है। जो वायु का संवहन करने के साथ–2 स्वर (वाणी) को उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

घ) **श्वास नली की रचना एवं कार्य :–** यह स्वर यंत्र से आरम्भ होकर फेफड़ों तक पहुँचने वाली नली होती है। यह लगभग 10 से 12 से.मी. लम्बी होती है। इसका कुछ भाग वक्षगुहा में स्थित होता है।

**कार्य :–** इस श्वास नली के माध्यम से श्वास फेफड़ों तक पहुँचता है। इस श्वास नली में उपस्थित गोबलेट सैल्स श्लेष्मा का स्त्राव करती रहती है। यह श्लेष्मा श्वास नलिका को नरम व चिकनी बनाए रखती है। जिससे धूल मिट्टी के कण व सूक्ष्म जीवाणु इस श्लेष्मा से चिपक जाते है तथा फेफड़ों को हानि नहीं पहुँचा पाते।

ड़) **श्वसनी एवं श्वसनिकाओं की रचना एवं कार्य :–** श्वासनली वक्ष गुहा में जाकर दो भागों में बंट जाता है। इन शाखाओं को श्वसनी (Bronchi) कहते है। प्रत्येक श्वसनी फेफड़ों में जाकर अनेक शाखाओं में बंट जाती है। इन शाखाओं को श्वसनिकाएं (Bronchioles) कहते है। अनेक श्वसनिकाएं भी आगे चलकर विभिन्न छोटी–2 रचनाओं में बंट जाती है। इन रचनाओं को वायुकोष (Alveoli) कहते है।

**कार्य :–** श्वासनली के द्वारा आया श्वास (वायु) श्वसनी एवं श्वसनिकाओं के माध्यम से फेफड़ों में प्रवेश करता है।

च) **वायुकोष :–** वायुकोष श्वसनिकाओं की रचनाएं होती है। इन नलिकाओं का अन्तिम सिरा फूलकर थैली के समान रचना बनाता है। यह रचना वायुकोष कहलाती है। इस प्रकार यहाँ अंगूर के गुच्छे के समान रचना बन जाती है। ये रचना एक कोशिय दीवार की बनी होती है। यहां पर रक्त वहिनियों का घना जाल पाया जाता है।

**कार्य :–** इन वायुकोषों का कार्य आक्सीजन एवं कार्बन –डाईआक्साइड का आदान–प्रदान करना होता है।

छ) **फेफड़ों की रचना एवं कार्य :–**

मानव शरीर में दो फेफड़े पाए जाते है ये गुलाबी रंग के कोमल कोणाकार तथा स्पंजी अंग है। फेफड़े अत्यन्त

कोमल व महत्वपूर्ण अंग है। इसी लिए इनकी सुरक्षा के लिए उनके चारों और पसलियों का मजबूत आवरण पाया जाता है।

प्रत्येक फेफड़े के चारों और एक पतला आवरण पाया जाता है जिसे फुफ्फुसावरण (Plura) कहा जाता है। इस आवरण में गाढ़ा चिपचिपा द्रव फुफ्फस द्रव (Plewal fluid) भरा होता है। बायां फेफड़ों दाएं फेफड़े की अपेक्षाकृत छोटा होता है। क्योंकि बायीं और हृदय उपस्थित होता है। फेफड़ों का निचला भाग डायाफ्राम नामक पेशीय रचना के साथ जुड़ा होता है। दाहिना फेफड़ा तीन पिण्ड़ो (Lobe) में तथा बायां फेफड़ा दो पिण्ड़ो (Lobe) में बटा होता है।

**कार्य :–** मनुष्य के फेफड़ों में वायुकोषों का घना जाल होता है। (मधुमक्खी के छत्ते के समान)। फेफड़ों का हृदय के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। हृदय द्वारा भेजे गए रक्त का आक्सीकरण फेफड़ों द्वारा किया जाता है।

ज) **डायाफ्राम की रचना एवं कार्य :–** डायाफ्राम लचीली मांसपेशियों से निर्मित श्वसन अंग है। श्वसन मांसपेशियों में यह सबसे शक्तिशाली मांसपेशी होती है। जिसका सम्बन्ध दोनों फेफड़ों के साथ होता है। यह डायाफ्राम दोनों फेफड़ों को नीचे की और साधकर (Tone) रखता है।

**कार्य :–** डायाफ्राम वक्ष एवं उदर को विभाजित करने का कार्य करता है।

## श्वसन तंत्र की क्रिया

**जिस** समय नासिका से श्वास लिया जाता है नासिका में उपस्थित सूक्ष्म रोम केशों का जाल धूल एवं धुएं के कणों को छान देता है। यहाँ पर उपस्थित संवेदी नाड़िया वायु की गन्ध का ज्ञान मस्तिष्क को कराती है। यहाँ तो वायु ग्रसनी में पहुँच जाती है। ग्रसनी में उपस्थित कण्ठच्छद अन्न नलिका के द्वार को बन्द कर देता है। जिससे यह वायु स्वर यन्त्र से होती हुई श्वास नलिका में चली जाती है। श्वास नलिका में रोमिकाएं पायी जाती है। उस श्लेष्मा के द्वारा वायु के साथ आए धूल, धुंए, सूक्ष्म जीव आदि को चिपका दिया जाता है।

श्वास नलिका से वायु श्वसनी एवं श्वसनी से श्वसनिकाओं से होती हुई वायु कोषों में भर जाती है। वायु भरने के कारण ये वायुकोष फूल जाते है। इन वायुकोषों के मध्य रक्तवाहिनीयों का घना जाल होता है। ये रक्त वाहिनीयां हृदय से कार्बन डाइआक्साइड़ युक्त अशुद्ध रक्त लाती है तथा वायुकोषों में कार्बनडाइआक्साइड देकर आक्सीजन को ग्रहण करती है। जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार कार्बन डाइआक्साइड़ वायुकोषों से श्वसनिकाओं में, श्वसनिकाओं से श्वसनी में, श्वसनी से श्वासनलिका में, श्वास नलिका से स्वर यंत्र, ग्रसनी से होती हुई नासिका के माध्यम से बाहर भेज दी जाती है। यह क्रिया प्रश्वास कहलाती है।

**श्वसन दर :–**

एक मिनट में एक मनुष्य जितनी संख्या में श्वास प्रश्वास की क्रिया करता है। श्वसन दर कहलाती है।

| | | |
|---|---|---|
| 0–5 वर्ष | – | 40 श्वास/प्रति मिनट |
| 5–12 वर्ष | – | 20–22 श्वास /प्रति मिनट |
| व्यसक | – | 16–18 श्वास /प्रति मिनट |

मनुष्य में श्वसन क्रिया का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित मेड्यूला नामक स्थान से होता है।

**वायु की धारिता :–** एक मनुष्य द्वारा प्रत्येक श्वास में जिस मात्रा में वायु ग्रहण की जाती है तथा प्रश्वास में जिस मात्रा में वायु छोड़ी जाती है। इस मात्रा की नाप वायु धारिता कहलाती है। इसे नापने के लिए स्पाइरोमीटर नामक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। वायु धारिता के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु :–

1) **प्राण वायु (Tidal volume) :–** वायु की वह मात्रा जो सामान्य श्वास में ली जाती है तथा सामान्य प्रश्वास

में छोड़ी जाती है। प्राण वायु कहलाती है। यह मात्रा 500 ml होती है। यह मात्रा स्त्री और पुरूष दोनों में समान होती है।

2) **निश्वसति आरक्षित आयतन (Expiratory Reserve Volume) :–** सामान्य प्रश्वास छोड़ने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से बाहर छोड़ी जा सकती है। निश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 1000 ml होती है।

3) **प्रश्वसित आरक्षित आयतन (Insfirctory Reserve Volume) :–** सामान्य श्वास लेने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से ग्रहण की जा सकती है। प्रश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 3300 ml होती है।

4) **अवशिष्ट आयतन (Residual Volumes) :–** हम फेफड़ों को पूर्ण रूप से वायु से रिक्त नहीं कर सकते अपितु गहरे प्रश्वास के बाद भी जो वायु की मात्रा फेफड़ों में शेष रह जाती है। अवशिष्ट आयतन कहलाती है। वायु की इस मात्रा का आयतन 1200 ml होता है।

5) **फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता (Vital Capacity) :–** गहरे श्वास में ली गयी वायु तथा गहरे प्रश्वास में छोड़ी गयी वायु का आयतन फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 4800 ml होती है।

6) **फेफड़ों की कुल वायु धारिता (Total lung Capacity) :–** फेफड़ों द्वारा अधिकतम वायु ग्रहण करने की क्षमता फेफड़ों की कुल वायु धारिता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 6000 ml होती है।

## आन्तरिक श्वसन तंत्र–संरचना

**आन्तरिक** श्वसन का अर्थ भोजन से उत्पन्न रस (ग्लूकोज) के दहन एवं दहन की क्रिया में उत्पन्न ऊर्जा से होता है। आन्तरिक श्वसन में शरीर के अन्दर स्थित कोशिकाएं ऊर्जा प्राप्त करती है। इस क्रिया से भोजन से प्राप्त ग्लूकोज का दहन होता है। आन्तरिक श्वसन की क्रिया में ग्लूकोज का दहन दो प्रकार से होता है।

क) **आक्सी श्वसन (Aerobic Respiration) :–** जब कोशिका में आक्सीजन उपस्थित होती है। तब ऑक्सीजन की उपस्थिति में ग्लूकोज का पूर्ण रूप से आक्सीकरण होता है तथा इस क्रिया में जल के साथ–2 अधिकतम ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। ग्लूकोज के एक अणु के आक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप 38 ए.टी.पी. की उत्पत्ति होती है। मनुष्य की अधिकांश कोशिकाओं में आक्सी श्वसन की क्रिया के परिणामस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है।

$C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2 \rightarrow 6\,Co_2 + 6\,H_2O + 38\,ATP$

ग्लूकोज आक्सीजन का. डाईआक्साइड जल ऊर्जा

ख) **अनाक्सी श्वसन :– (Anarobic Respiration ) :–** जब कोशिका में आक्सीजन की उपस्थित नहीं होती किन्तु शरीर को तुरन्त ऊर्जा की अत्याधिक आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में कोशिका ग्लूकोज का दहन आक्सीजन की अनुपस्थिति में ही कर देती है। यह क्रिया अनाक्सी श्वसन कहलाती है। ग्लूकोज के एक अणु के दहन के परिणामस्वरूप बहुत कम ऊर्जा **2 ए.टी.पी.** की ही उत्पत्ति होती है। मनुष्य शरीर में अनाक्सी श्वसन कठिन श्रम की अवस्था, तेज भागने, कठिन व्यायाम की अवस्था में होता है।

$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2\,C_2H_5\,COCOOH + ATP$

ग्लूकोज लैक्टिक अम्ल ऊर्जा

इस प्रकार अनाक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप लैक्टिक एसिड़ की उत्पत्ति होती है। इस लैक्टिक एसिड़ की

अधिकता पेशियों में थकावट उत्पन्न करती है।

श्वास–प्रश्वास में ली गई वायु की सरंचना।

| | श्वास | | प्रश्वास |
|---|---|---|---|
| 1) | नाइट्रोजन – 78% | (1) | नाइट्रोजन – 78% |
| 2) | ऑक्सीजन – 21% | (2) | ऑक्सीजन – 16% |
| 3) | कार्बन डाई आक्साइड – 0.03% | (3) | कार्बन डाई आक्साइड – 4.5% |
| 4) | अन्य गैसे :– 0.93% | (4) | अन्य गैसे – 1.5% |

**श्वसन का नियंत्रण :–**

श्वसन क्रिया अनैऐच्छिक रूप से प्रतिक्षण स्वतः ही होती रहती है। इस क्रिया का नियन्त्रण केन्द्र मस्तिष्क में स्थित होता है। इस क्रिया पर हमारी इच्छा का कुछ हद तक नियन्त्रण अवश्य पाया जाता है। किन्तु यह पूर्ण रूप से हमारी इच्छा के अधीन कार्य नहीं करती है। इस क्रिया के नियन्त्रण को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(क) तंत्रिका नियन्त्रण

(ख) रासायनिक नियन्त्रण

क) **तंत्रिका नियन्त्रण :–** मस्तिष्क में स्थित कोर्टेक्स इच्छित रूप में श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करने का कार्य करता है। जबकि मस्तिष्क के मेडूयला नामक स्थान को श्वसन केन्द्र माना गया है।

ख) **रासायनिक नियन्त्रण :–** रक्त में कुछ रासायनिक पदार्थो (हार्मोन्स) की मात्रा बढ़ने पर स्वतः ही श्वसन दर को बढ़ा देती है। रक्त में आक्सीजन की सान्द्रता कम होने पर एवं कार्बन डाईआक्साइड की सान्द्रता बढ़ने पर श्वसन दर बढ़ जाती है।

## श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक :–

1) **प्रदूषण एवं घुटन युक्त वातावरण :–** प्रदूषण एंव घुटन युक्त वातावरण में हमें आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हो पाती जिससे श्वसन क्रिया तीव्र हो जाती है। यदि श्वसन क्रिया तीव्र होने पर भी आक्सीजन की पूर्ति नहीं हो पाती तब सिर दर्द, उल्टी, चक्कर, बेचैनी तथा बेहोशी आदि लक्षण प्रकट होते है। लम्बे समय तक ऐसे वातावरण में रहने पर दमा, एलर्जी तथा फेफड़ों के कैंसर आदि रोग जन्म लेते है।

2) **आहार :–** आहार का श्वसन क्रिया एवं वृक्कों की क्रियाशीलता पर प्रभाव पड़ता है। तेज नमक एवं मिर्च मसाले युक्त उत्तेजक आहार व उत्तेजक दवाईयों का सेवन करने से मनुष्य की श्वसन दर व चयापचय दर बढ़ी रहती है तथा ऐसे मनुष्यों के हाथों–पैरों में सूक्ष्म कम्पन्न होने लगता है।

3) **श्रमहीन जीवन शैली :–** श्रम करने पर शरीर में ऊर्जा की अधिक मात्रा का उपयोग होता है। जिसकी पूर्ति के लिए श्वसन क्रिया तेज हो जाती है तथा फेफड़े क्रियाशील होकर आक्सीजन की पूर्ति करते है। श्रम न करने से फेफड़ों का एक चौथाई भाग ही क्रियाशील रहता है। इसके कारण दमा, टी.बी., श्वास फूलना आदि रोग पैदा होते है।

4) **प्रातःकालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास :–** प्रातः कालीन भ्रमण करने से श्वसन क्रिया पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रातः काल में प्रदूषण का स्तर न्यूनतम होता है। इस समय घूमने एवं व्यायाम आदि करने से फेफड़ों की प्राण ऊर्जा बढ़ती है। फेफड़े अधिक क्रियाशील होते है तथा आक्सीजन की पूर्ति होने से वह अनेक रोगों से बच सकता है।

5) **मानसिक आवेग :** क्रोध, ईष्या, भय, तनाव, अवसाद आदि श्वसन क्रियाओं में बाधाएं उत्पन्न करती है। इन

अवस्थाओं में श्वसन क्रिया अत्यधिक तीव्र हो जाती है। हृदय गति अनियंत्रित हो जाती है तथा रक्तचाप बढ जाता है। ध्यान का अभ्यास करने पर श्वसन क्रिया धीमी एंव दीर्घ बनती है।

# वृक्क

**वृक्क** की संरचना एंव कार्य शरीर में उत्पन्न होने वाले अवशिष्ट उत्सर्जी पदार्थ जिनका निष्काषन अनिवार्य होता है, रक्त से उन उत्सर्जित पदार्थो को छानकर अलग करने एंव बाहर निकालने के लिए मानव शरीर में एक जोड़ी सेम के बीज के समान आकार वाली रचना उदरीय गुहा में पायी जाती है। यह रचना वृक्क कहलाती है।

वृक्क हमारे शरीर के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। जो प्रतिक्षण रक्त छानने की क्रिया करते रहते है। जब इन वृक्कों में विकार उत्पन्न हो जाता है, तब रक्त में यूरिक ऐसिड़ का बढ़ना, यूरिया का बढना, बहुमूत्र, जोड़ों में सूजन–दर्द, पत्थरी एंव गठिया आदि लक्षण प्रकट होते है।

**वृक्क का सामान्य परिचय :–** मानव शरीर की उदरीय गुहा के पश्च भाग में रीढ़ के दोनों ओर दो वृक्क स्थित होते है। ये बैंगनी रंग की रचनायें होती है। जो आकार में बहुत बड़ी नहीं होती है। इन वृक्कों के ऊपर टोपी के समान अधिवृक्क ग्रन्थियां नामक रचना पायी जाती है। ये वृक्क शरीर में रक्त को छानकर, रक्त की अशुद्धियों को मूत्र के रूप में शरीर से उत्सर्जित करने का कार्य करती है।

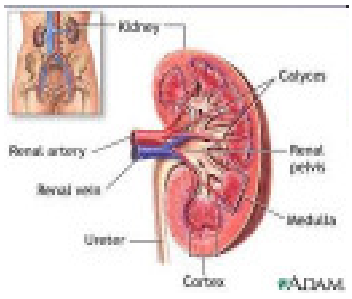


**वृक्क की संरचना :–**

1) वृक्क की बाह्य सरंचना

2) वृक्क की आन्तरिक सरंचना

**वृक्क की बाह्य सरंचना :–** मानव शरीर में उदरीय गुहा के पश्च भाग में रीढ़ के दोनों ओर एक जोड़ी वृक्क पायी जाती है। एक वयस्क के वृक्क का भार 140 से 150 ग्राम के मध्य होता है। प्रत्येक वृक्क की लम्बाई 10 से 12 से. मी. के मध्य एंव चौड़ाई 5 से 6 से.मी. के मध्य होती है, ये वृक्क देखने में सेम के बीच के समान आकृति वाले होते है। इन दोनों वृक्कों में बाए वृक्क की तुलना में दाहिना वृक्क कुछ नीचे की ओर एंव बायां वृक्क ऊपर की ओर फैला होता है।

वृक्कों का मध्य भाग हायलम कहलाता है, इस मध्य भाग से ही रक्त वहिकाएं वृक्कों में प्रवेश करती है एंव मूत्रवाहिकाएं बाहर निकलती है। वृक्क का ऊपरी सिरा उर्ध्व ध्रुव एंव निचला सिरा निम्न ध्रुव कहलाता है। प्रत्येंक वृक्क के ऊपरी ध्रुव पर एक–एक अधिवृक्क ग्रन्थि उपस्थित होती है। प्रत्येक वृक्क कैप्सूल के एक आवरण में लिपटा रहता है। यह कैप्सूल तन्तु उतक से बना होता है, जिसे वृक्कीय सम्पुट कहा जाता है:–

**वृक्क की आन्तरिक सरंचना:–**

वृक्क की आन्तरिक संरचना तीन भागों में बटी होती है

1) वृक्कीय श्रोणि (Renal Pelvis)
2) वृक्कीय अन्तस्था (Renal medulia)
3) वृक्कीय प्रान्तस्था (Renal cortex)

(1) **वृक्कीय श्रोणि :–**यह वृक्क का सबसे आन्तरिक भाग होता है यही से मूत्रनली बाहर की ओर निकलती है।

इस स्थान पर संचायक स्थान (Collecting Space) होता है।

(2) **वृक्ककीय अन्तस्था :–** यह वृक्क का मध्यभाग होता है जिसे 8 से 18 तक की संख्या में वृक्कीय पिरामिड्स पाये जाते है। ये पिरामिड्स शंकु आकार के वृक्कीय श्रेणि में आकर खुलते है। इन पिरामिड्स में स्थित नलिकाएं मूत्र के पुनः अवशोषण की क्रिया में भाग लेती है।

(3) **वृक्कीय प्रान्तास्था :–**यह वृक्क का सबसे बाहरी भाग होता है, जो वृक्कीय सम्पुट के साथ जुड़ा होता है। अर्थात यह भाग वृक्क के बाहरी आवरण (कैप्सूल) से जुड़ा होता है।

वृक्क का निर्माण करने वाली कोशिकाएं वृक्काणु (नेफ्रान) कहलाती है। वृक्काणुओं की रचना इतनी अधिक छोटी होती है कि इन्हे आंखों से नहीं देखा जा सकता। बल्कि इन्हे सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है इसलिए इन्हे सूक्ष्मदर्शी इकाई (Microscopic Unit) कहा जाता है।

प्रत्येक वृक्क का निर्माण 10 से 13 लाख वृक्काणुओं के मिलनें से होता है। वृक्क की कार्यक्षमता एंव कार्यकुशलता इन वृक्काणुओं पर निर्भर करती है तथा 45 से 50 वर्ष की आयु के उपरान्त इन वृक्काणुओं की संख्या लगभग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से घटनें लगती है यही कारण होता है कि 50 वर्ष की आयु के उपरान्त मूत्र निर्माण की क्रिया धीमी पड़ती है व मूत्र सबन्धी रोग बढ़ने लगते है।

**वृक्काणु :–** वृक्क में दो प्रकार के वृक्काणु उपस्थित होते है।

वृक्क में उपस्थित वह वृक्काणु जो तनाव व दबाव में क्रियाशील होते है, वे जक्स्टामेड्यूलरी नेफ्रान कहलाता है। प्रत्येक वृक्काणु की रचना को दो भागों में बायां जाता है।

(1) कोशिका गुच्छीय

(2) वृक्कीय नलिका

(1) **केशिका गुच्छीय :–** उसे मालपीजी का पिण्ड् भी कहा जाता है। यह वृक्काणु का आरम्भिक भाग है जो गुच्छे के रूप में होता है। यह कप (प्याले) के समान रचना बनाकर रक्त निस्पन्दन (Filteration) की क्रिया में भाग लेता है। वृक्काणुओं का यह भाग छलनीनुमा रचना से जब रक्त छानता है तो रक्त में उपस्थित जल, ग्लूकोज, यूरिया, एमनोअम्ल आदि। तो इनमें से छन जाते है, यह क्रिया कोशिका गुच्छीय निस्पन्दन कहलाती है।

(2) **वृक्कीय नलिका :–** यह वृक्काणु का ऐठां हुई (U) के आकार की रचना बनाती है। इस रचना को हेनले का लूप (loop of Henle) कहा जाता है। यहां वृक्काणु की एक भुजा पहले नीचे की ओर जाती है तथा फिर ऊपर की ओर आती है। यहां पर छनकर आयें द्रव से पुनः अवशोषण की क्रिया होती है तथा अवशोषण के उपरान्त उपयोगी पदार्थ पुनः रक्त में मिला दिये जाते है। यहां से बचा व्यर्थ पदार्थ वृक्कीय श्रोणि में जाता है वहां से मूत्र की संज्ञा ग्रहण कर मूत्रनलिका द्वारा मूत्राशय में चला जाता है।

## वृक्को की क्रिया विधि

वृक्को मे महाधमनी (Aorta) रक्त लेकर आती है तथा अनेकों शाखाओं में बट जाती है। ये शाखाएं कोशिका गुच्छीय के छलनीनुमा भाग से होकर गुजरती है। यहां पर रक्त को छानकर उससे अशुद्धियां अलग कर दी जाती है यह क्रिया गुच्छीय निस्पन्दन कहलाती है।

पुनः– वृक्क नलिका हेनले लूप से होकर निकलती है तथा यहां पर एक बार पुनः पूर्व में छने पदार्थो को छाना जाता है यह क्रिया पुनः अवशोषण कहलाती है अर्थात् वृक्कों में रक्त दो बार छनता है। दो बार छानने के उपरान्त रक्त में स्थित यूरिया, अमोनिया, क्रिएटीन, सल्फेट तथा अतिरिक्त शर्करा आदि पदार्थ अलग कर दिये जाते है। व्यर्थ पदार्थ वृक्कीय श्रोणि में इक्ट्ठा होते है जहां से ये पदार्थ मूत्र के रूप में मूत्र नली द्वारा वृक्क से बाहर निकलते है। एक स्वस्थ मनुष्य के वृक्क प्रतिमिनट 125 मी0ली0 की दर से रक्त छानते

रहते है।

**वृक्कों के कार्य :–**

क) **रक्त को छानकर मूत्र निर्माण करना :–** वृक्क का सबसे मुख्य कार्य रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित उत्सर्जित पदार्थो को अलग करना होता है। वृक्क इन पदार्थो को जल में घोलकर मूत्र का निर्माण करता है। मनुष्य के दोनों वृक्क प्रतिदिन 150 से 180 लीटर रक्त को छानते है। इस प्रकार एक मनुष्य प्रतिदिन 1 से 1. 8 लीटर स्वच्छ पारदर्शी हल्के पीले रंग का द्रव मूत्र का उत्सर्जन करता है।

हल्का पीला रंग यूरेबिलिन नामक रंजक पदार्थ के कारण होता है। मूत्र का पी.एच. 5 से 8 के बीच होता है। मूत्र में उत्सर्जिक पदार्थ यूरिया होता है। प्रतिदिन मनुष्य सामान्य अवस्था में 300 से 400 मि. ग्राम यूरिया उत्सर्जित करता है।

**शरीर से उत्सर्जित मूत्र परिक्षण के आधार पर विभिन्न अवस्थाओं एंव रोगों की पहचान की जा सकती है।**

(1) मूत्र के साथ अधिक मात्रा में रक्त शर्करा (ग्लूकोज) का आना मधुमेह रोग का सूचक है।

(2) मूत्र के साथ अधिक मात्रा में प्रोटीन का आना धातुक्षय अथवा एल्बूमिनेरिया रोग का सूचक है।

(3) मूत्र के साथ अधिक मात्रा में रक्त कणों की उपस्थिति शरीर में सक्रांमक रोग का सूचक है।

(4) मूत्र के साथ अधिक मात्रा में पित्त का आना पीलिया रोग का सूचक है।

(5) मूत्र के साथ जीवाणुओं का आना व वृक्कों में भयंकर दर्द एंव जलन होना। वृक्क प्रदाह नामक रोग का सूचक है।

(6) जब वृक्क सल्फेट, क्लोराइड एंव फास्फेटों को रक्त से धानकर अलग तो कर देते है। किन्तु उन्हे मूत्र के साथ उत्सर्जित नहीं कर पाते। वे अकार्वनिक पदार्थ वृक्क में ही इक्टठा होकर पत्थरी का रूप धारण कर लेते है।

(7) जब वृक्क भलि–भांति रक्त में उपस्थित यूरिया को उत्सर्जित नहीं कर पाते तब रक्त में यूरिक एसिड़ की मात्रा बढ़ने लगती है यह यूटिक एसिड़ शरीर के जोड़ों में एकत्र होकर जोड़ो का दर्द एंव सूजन गठिया रोग कहलाता है।

(8) अत्यधिक तनाव की अवस्था में वृक्कों का पूर्णतया निष्क्रिय हो जाना किडनी फेल कहलाता है।

ख) **जल का सन्तुलन करना :–**

वक्कों का दूसरा प्रमुख कार्य शरीर में जल की मात्रा को सन्तुलित करना होता है। इसी कारण अधिक जल का सेवन करने पर मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।

ग) **अम्ल क्षार सन्तुलन बनाए रखना :–**

अधिक मात्रा में अम्लीय पदार्थो को ग्रहण करने पर अनावश्यक तत्वों को वृक्क मूत्र के रूप में शरीर से उत्सर्जित कर देते है। जबकि क्षारीय तत्वों की भी अधिकता होने पर इन तत्वों को रक्त से छानकर मूत्र के साथ उत्सर्जित करते है।

घ) **रक्त शर्करा का नियन्त्रण :–** रक्त शर्करा (ग्लूकोज) का नियन्त्रण करने में वृक्क महत्वपूर्णता से भाग लेते है। रक्त में 80–120 मिली ग्राम प्रति 100 एम एल रक्त शर्करा उपस्थित होती है। वृक्क से जब रक्त निस्यन्दन की क्रिया होती है तब इस शर्करा को छानकर पुनः अवशोषित कर लिया जाता है।

ड़) **यूरिया का नियन्त्रण :–** एक स्वस्थ मनुष्य के 100 एम एल रक्त में 20–40 यूरिया पाया जाता है। यूरिया की यह मात्रा वृक्कों द्वारा नियन्त्रित की जाती है।

च) **सोड़ियम एंव कैल्सियम का नियन्त्रण :–** वृक्क रक्त में सोड़ियम एंव कैल्शियम आदि खनिज लवणों के स्तर को नियन्त्रित करने का कार्य करते है।

छ) **रक्त दाब नियन्त्रण :–** एक स्वस्थ मनुष्य का रक्त रक्तहानियों में 80–120 (mm of HG) के दबाव से बहता है। जिसे रक्त दाब कहा जाता है। इस रक्त दाब को नियन्त्रित करने में भी वृक्क भाग लेते है।

**वृक्कों को प्रभावित करने वाले कारक**

क) **जल की मात्रा :–** जल की मात्रा कम लेने से वृक्कों में मूत्र निर्माण की क्रिया प्रभावित होती है। व अशुद्धियों की मात्रा शरीर में बढ जाती है।

ख) **उत्सर्जक पदार्थ :–**उत्तेजक पदार्थ जैसे चाय, काफी, एल्कोहल व दवाईयों के सेवन से उत्तेजित हो जाते है व मूत्र निर्माण की क्रिया तीव्र हो जाती है।

ग) **शामक पदार्थ :–** तम्बाकू, गुटका, धूम्रपान वृक्कों की क्रियाशीलता को प्रभावित करते है।

घ) **मनोस्थित :–** क्रोध, भय, तनाव व हिसंक वृत्ति आदि का प्रभाव वृक्कों की क्रियाशीलता पर पड़ता है।

## मस्तिष्क

**मस्तिष्क :–** मनुष्य का मस्तिष्क शरीर के भार का 1/50 होता है और कपाल गुहा में अवस्थित रहता है। विकास की आरंभिक अवस्था में मस्तिष्क को तीन भागों में बांटा गया है।

1) अग्रमस्तिष्क
2) मध्यमस्तिष्क
3) पश्चमस्तिष्क

1) **अग्रमस्तिष्क (Fore Brain) :–** यह मस्तिष्क का आगे का भाग होता है जिसमें सेरीब्रम, बेसन–गैंगलिया, थैलेमस, हाइयोथैलेमस आदि रचनाएं स्थित रहती है।

**प्रमस्तिष्क या सैरीब्रम (Cerebrum) :–** यह केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र का प्रमुख तथा मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। ,गुम्बज की तरह इसके नीचे का भाग समतल होता है। कपाल गुहा का अधिक भाग प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स से भरा होता है जो तन्त्रिका कोशिकाओं का बना होता है। इसे ग्रे मैटर कहते है।

प्रमस्तिष्क कार्टेक्स से नीचे का भाग तन्त्रिका तन्तुओं (एक्सोन्स) से बना होता है और श्वेत रंग का होता है, जिसे व्हाइट मैटर कहते है। प्रमस्तिष्क बुद्धि, इच्छा, आवेश, स्मरण शक्ति जैसी उन अधिक विकसित क्षमताओं का स्थल है, जो मनुष्य को विशिष्ट रूप से सम्पन्न किए हुए है।

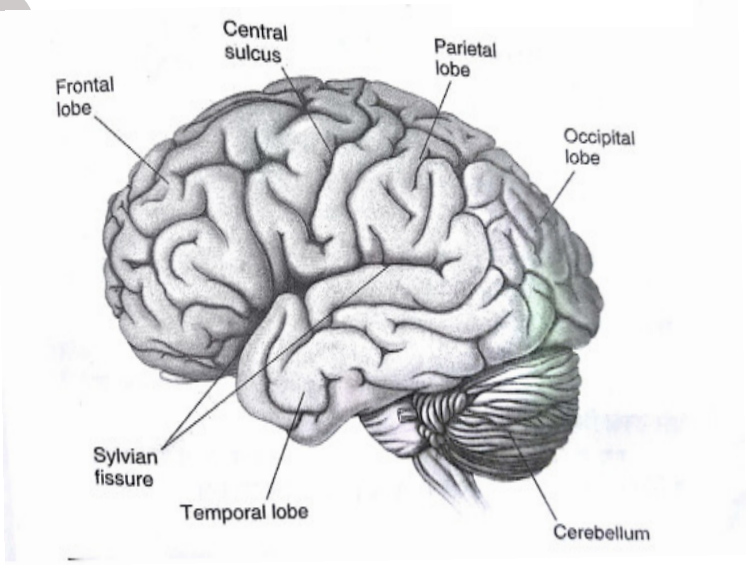

**बेसल गैंग लिया** :– प्रत्येक प्रमस्तिष्कीय में कॉर्पस कैलोसम के नीचे श्वेत द्रव्य (तन्त्रिका तन्तु) में धसे हुए भूरे द्रव्य (सेल बाडीज) के कुछ छोटे–मोटे पिण्ड होते हैं, जिसे बेसन गैंगलिया कहा जाता है। इनका मुख्य कार्य गति का समन्वय और शरीर की समस्थिति बनाए रखना है, इनमें विकार उत्पन्न होने से हाथ–पैरो में झटकेदार गतियाँ और अस्थिरता पैदा हो जाती है।

**थैलेमस**:– प्रत्येक तृतीय वेन्ट्रिकल के पार्श्व में तन्त्रिका कोशिकाओं एंव तन्तुओं का एक अण्डाकार पिण्ड होता है, जिसे थैलेमस कहा जाता है। थैलेमस शरीर को प्राप्त होने वाले संवेदी आवेगों का वर्गीकरण करने और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स तक उन्हे पहुँचाने का कार्य करता है।

**हाइपोथैलेमस** :– थैलेमस के नीचे तथा पिट्यूटरी ग्रन्थि के ठीक ऊपर स्थित तन्त्रिका कोशिओं से बनी एक रचना है। यह श्वसन कार्य में सहायता करता है। शरीर के ताप क्रिया को नियमित रखता है। एवं भावना (Emotions) को नियन्त्रित करने में भूमिका निभाता है पिट्यूटरी ग्रन्थि की सहायता से यह शरीर की समस्त अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों के कार्य में सहायता करता है।

**इन्टरनल कैप्सूल** :– मस्तिष्क की गहराई में थैलेमस एंव बेसल गैंगलिया के बीच स्थित उभरे हुए प्रेरक तन्तुओं से बना एक महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है, जिसे इन्टरनल कैप्सूल कहा जाता है जिसके माध्यम से समस्त तन्त्रिका आवेगों का संवहन होता है।

2) **मध्यमस्तिष्क (Mid Brain)**:–मध्यमस्तिष्क, अग्र–मस्तिष्क एवं पश्च–मस्तिष्क के बीच और मस्तिष्क स्तम्भ के ऊपर स्थित रहता है। इसमें सेरीब्रल पेडन्क्ल्स एंव कॉपोरा क्वाड्रिजेमिना का समावेश होता है। कॉपोरा कवाड्रिजेमिना डार्सल की सतह पर चार गोलाकार उभार होते है। जिन्हे दो संवेदी केन्द्रों में विभक्त किया जाता है। सुपीरियर कोलीकुलि द्वारा किसी वस्तु को देखने की क्रिया सम्पन्न होती है तथा इन्फीरियर कोलीकुलि द्वारा सुनने की क्रिया सम्पन्न होती है।

सेरीब्रल पेडन्क्ल्स के समीप लाल केन्द्रक स्थित रहता है। सुपीरियर कोलीकुलि के बीच पिनीयल बाडी स्थित रहती है।

3) **पश्च मस्तिष्क (Hind Brain)** :– यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग होता है जिसमें **पोन्स, मेडयूला ऑब्लांगेटा** तथा अनुमस्तिष्क का समावेश रहता है।

**पोन्स (Pons)**:– यह मध्यमस्तिष्क के नीचें तथा मेडयूला ऑबलागेटा के ऊपर रहता है। यह मस्तिष्क स्तम्भ के बीच का भाग होता है।

**मेड्यूला ऑब्लांगेटा (Medula Oblongata)**:– यह मस्तिष्क स्तम्ब का सबसे नीचे का भाग होता है। इसका आकार बेलनाकार दण्ड की तरह होता है, जो औसतन 2.5 से.मी. लम्बा होता है। इसका ऊपरी भाग कुछ फूला रहता है। इसका बाह्य भाग श्वेत द्रव्य तथा भीतरी भाग भूरे द्रव्य का बना होता है। इसमें हृदीय एंव श्वसनीय केन्द्र स्थित होते है, जो हृदय एंव श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करते है।

**अनुमस्तिष्क या सेरीबेसम**:– यह प्रमस्तिष्क के आक्सिपिटल लोब के नीचे पीछे की ओर उभरा हुआ भाग होता है, जो मेड्यूला ऑब्लांगेटा के ऊपर, पोन्स के पीछे कपालीय गुहा में स्थित होता है।

अनुमस्तिष्क ऐच्छिक पेशियों में समन्वय स्थापित करता है तथा शरीर की मुद्रा और उसके सन्तुलन को बनाए रखता है। यह पेशियों में तनाव की श्रेणी, सन्धियों (Joints) की स्थिति और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से आने वाली जानकारी से सम्बन्धित संवेदी आवेगों को निरन्तर प्राप्त करता रहता है।

**मस्तिष्क स्तम्भ :–** मध्य मस्तिष्क, पोन्स एंव मेड्यूला ऑब्लंगेटा के एक साथ कई सामान्य कार्य है। इन्हे प्रायः संयुक्त रूप से मस्तिष्क स्तम्भ कहा जाता है। इस क्षेत्र को न्यूक्लिाइ (Nuclei) भी रहते है। जहां से कपालीय तन्त्रिकाएँ निकलती है।

**मस्तिष्कावरण या मैनिन्जीज :–** मस्तिष्कावरण सुरक्षात्मक झिल्लियां है। जो खोपड़ी एंव मस्तिष्क के बीच स्थित रहकर स्पाइनल कार्ड (सुषुम्ना) को पूर्णरूप से ढ़के रहती है तथा इन्हे अघात से बचाती है मेनिन्जीज तीन प्रकार की होती है।

1) ड्यूरामैटर (Duramater)
2) एराक्नाइड मैटर (Arachnoid Mater)
3) पाया मैटर (Pia Mater)

**डयूरामैटर :–** डयूरामैटर सबसे ऊपरी आवरण (झिल्ली) होती है, जो कठोर सघन संयोजी उतकों की बनी होती है। इसमें दो परते होती है, बाह्म परत खोपड़ी की अन्दरूनी सतर का अस्तर है। इसकी आन्तरिक परत कुछ स्थानों पर अन्दर की ओर उभ्झरी होती है जो मास्तिष्क के भागों को अलग करती है एवं उन्हे स्थिति में बनायें रखने में सहायता करती है। डायाफैम्मा सेली वलय स्फैनाइड अस्थि में स्थित ग्डढें, सेला टर्शिका के ऊपर छत बनाता है, जिसमें पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित रहती है, जो ऊपर हाइपोथैलेमस से जुड़ी होती है।

**एराक्नॉइड़ मैटर :–** यह डयूरामैंटर के ठीक नीचे पतला और कोमल आवरण होता है, जो तन्तु एंव लचीले ऊतकों का बना होता है यह एक सकरें (कैपिलरी) **सबड्यूरल अवकाश** द्वारा ड्यूरामैटर से पृथक रहता है। एराक्नॉइड मैटर एंव पाया मैटर के बीच **सब–एराक्नाइड अवकाश** रहता है। सब–एराक्नाइड अवकाश में सेरिब्रोस्पाइनल द्रव विद्यमान रहता है, जो मस्तिष्क एंव स्पाइनल कार्ड को आघातों से बचाता है।

**पायामैटर :–** पायामैटर एराक्नॉइड के नीचे वाला आवरण है। यह संयोजी ऊतक की एक पतली झिल्ली होती है, जिसमें बहुत–सी रक्तवाहिनियां होती है यह मस्तिष्क एंव स्याइनल कार्ड की सतह के सम्पर्क में रहती है और मस्तिष्क के सभी मोड़ों को ढ़कती हुई प्रत्येक दरार में धंसी होती है।

**मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स :–**मस्तिष्क में स्थित आन्तरिक गुहाओं को वेन्ट्रिकल या निलय कहते है, जिनमें सेरिब्रो–स्पाइनल द्रव(CSF) भरा होता है।

दो लेटरल वेन्ट्रिकल्स (Lateral Ventricles)
तृतीय वेन्ट्रिकल (Third Ventricles)
चतुर्थ वेन्ट्रिकल (Fourth Ventricles)

**दोनों दाएं बाएं लेटरल वेन्ट्रिक्ल्स** वृहदाकार होते है, जो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धबालार्द्धो में स्थित रहते है। लेटरल वेन्ट्रिकल का मुख्य भाग प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध के पैराइटल लोब में स्थित रहता है।

**तृतीय वेन्ट्रिकल** दाएँ एवं बाएं थेलेमस के बीच में लेटरल वेन्ट्रिकल के नीचे स्थित रहता है।

**चतुर्थ वेन्ट्रिकल :–** तृतीय वेन्द्रिकल के नीचे, सेरीबेलम के बीच में स्थित चौरस पिरामिड़ी गुहा होती है। चतुर्थ वेन्ट्रिकल के पार्श्व में दो छिद्र होते है। जिन्हे 'फोरमिना ऑफ लुस्चका' कहते है। ये सभी वेन्ट्रिकल्स सेरिब्रो स्पाइनल द्रव (CSF) से भरे रहते है।

**सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (Cerebrospinal Fluid CSF) :–**

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव प्लाज्मा से मिलता–जुलता एक स्वच्छ, रंगहीन द्रव है जो सबएराक्नॉइड अवकाश एवं मस्तिष्क

के वेन्टिकल्स से भरा रहता है। यह मस्तिष्क के वेन्टिकल्स के ऊपरी भागों में स्थित कोशिकाओं की जालिका–कोरॉइड प्लेक्ससेस (Choroid Plexuses) द्वारा स्त्रावित होता है। औसतन व्यक्ति में यह 720 मिली. प्रतिदिन की दर से स्त्रावित होता रहता है। इसका दाब 60 से 140 मि.ली. जल तथा आपेक्षिक घनत्व 1005 होता है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव में प्रोटीन, ग्लूकोज, यूरिया, क्लोराइड़, पोटैशियम, कैल्शियम, सोडियम, यूरिक, अम्ल, सल्फेट, फॉस्फेट तथा क्रिस्टिनिन भी मिले रहते है। मस्तिष्कावरण शोथ आदि रोगों में इस द्रव की मात्रा बढ़ जाती है।

**कार्य :–** सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का मुख्य कार्य नाजुक तन्त्रिका ऊतकों एवं अस्थित गुहाओं की भितिओं के बीच पानी की गद्दीनुमा रचना बनाकर मस्तिष्क एवं स्पाइनल गॉर्ड की सुरक्षा करता है। अघात अवरोधक (Shock Absorber) की भांति कार्य करता है। पोषक तत्व एवं आक्सीजन भी मस्तिष्क को इसी के द्वारा पहुँचाए जाते है।

## तन्त्रिका तन्त्र

**तन्त्रिका तन्त्र :– तन्त्रिका तन्त्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तन्त्र है, जो सम्पूर्ण शरीर की तथा उसके विभिन्न भागों एवं अंगों की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण नियमन तथा समन्वयन करता है और समस्थिति बनाये रखता है। शरीर के सभी अनैच्छिक कार्यो पर नियन्त्रण तथा समस्त संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाना इसी तन्त्र का कार्य है।**

**तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिका ऊतकों से बना होता है, जिनमें तन्त्रिका कोशिकाओं या न्यूरॉन्स और इनसे सम्बन्धित तन्त्रिका तन्तुओं तथा एक विशेष प्रकार के सयोजी ऊतक जिसे न्यूरोग्लियां कहते है का समावेश होता है। तन्त्रिका तन्त्र के तीन भाग होते है।**

1. **केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र** (Central Nervous System)
2. **परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र** (Peripheral Nervous System)
3. **स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र** (Autonomic Nervous System)

## मेरूरज्जु / सुषुम्ना

**मेरूरज्जु को रीढ़ भी कहते है जो एक मोटी एवं दृढ़ रस्सी की भांति लम्बर वर्टिब्रा तक वार्टिब्रल कॉलम में सुरक्षित रहती है। व्यस्क में इसकी लम्बाई 45 से.मी. होती है। यह अपने निचले सिरे पर शंकु–आकार आकृति के रूप में सँकरी हो जाती है। तब उसे कोनस मेड्यूलेरिम (Conus Medullaris)कहते है, इसके सिरे में फाइलम टर्मिनेली नीचे की ओर कॉक्सिक्स तक जाते है, जो तन्त्रिका–मूलों से घिरे रहते है, इन्हें कॉडा इक्विनी कहते है।**

**स्पाइनल कॉर्ड़ की सम्पूर्ण लम्बाई से स्पाइनल तन्त्रिकाओं के जोड़े निकलते है। यह मोटाई में कुछ भिन्नता लिए रहती है, सरवाईकल एवं लम्बर क्षेत्रों में यह अन्य भागों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है। जहाँ से यह हाथ–पैरों को अत्यधिक तन्त्रिका सम्पूर्ति करती है। स्पाइनल तन्त्रिकाएँ (Spinal Nervous) लम्बर फोरामेन एवं सैक्रल फोरामेन से होती हुई वर्टिब्रल कैनाल से बाहर निकलती है। स्पाइनल कॉर्ड में पीछे एवं सामने की ओर गहरी दरार (Fissure) रहती है, जिससे यह प्रमस्तिष्क की भांति दाएं एवं बांए भाग के रूप में पूर्णत: विभाजित रहती है।**

मस्तिष्क के समान स्पाइनल कॉर्ड भी श्वेत एवं भूरे द्रव्य से बनी होती है। इसमें प्रेरक एवं संवेदी तन्तु होते है, इन तन्तुओं के द्वारा शरीर विभिन्न अंगों से मस्तिष्क को संवेदना पहुँचाता है ।

अनुप्रस्थ काट में स्पाइनल कॉर्ड का भूरा द्रव्य (Gray Metter) अंग्रेंजी के 'H' अक्षर की आकृति जैसा दिखाई देता है। इस भूरे द्रव्य के चार हॉर्नस (Horns) होते है। आगे की ओर उभरे हुए दो भागों को एन्टिरियर हॉर्न्स (Anterier Horns) तथा पीछे की ओर उभरे दोनों भागों को पोस्टीरियर हॉर्नस (Posterior Horns) कहते है।

एन्टीरियर हॉर्न्स से निकलने वाली तन्त्रिकाएँ धड़, पैर एवं बाहुओं की पेशियों में जाती है, जो प्रेरक तन्त्रिकाएँ (Motor Nervous) कहलाती है।

यदि संक्षेप में कहा जाये तो रीढ़ की हड्डी ही हमारे शरीर का मुख्यत आधार है। यदि इस आधार का थोड़ा सा भी नुकसान होता है। कहीं पर भी चोट आती है तो इससे हमारी समूची शारीरिक प्रणाली प्रभावित होती है। मस्तिष्क के साथ–2 मेरूरज्जू का भी सुदृढ़ एवं स्वस्थ होना अत्याधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

## नासिका की संरचना व कार्य

जिस ज्ञानेन्द्रिय द्वारा हमें गन्ध का ज्ञान होता है उसे 'घ्राणेन्द्रिय' (नासिका या नाक) कहते है। नाक के दो भाग होते है।

(क) बाहरी (बहिर्नासिका) External Nose

(ख) भीतरी (नासा गुहा) Nasal Fosoa

क) बाहरी (बहिर्नासिका) External Nose :– इसका कड़ा भाग हड्डियों से बना होता है और नीचे का मुलायम भाग जो दबाने से दब जाता है। मांस, कार्टिलेज और त्वचा का बना होता है। नाक के नीचे का भाग एक दीवार के द्वारा दो भागों में बंटा होता है जिन्हे 'नथुने' कहते है। इन नथुनों में बाल उगे रहते है जो छलनी का काम करते है, वायु की धूल, मिट्टी और सूक्ष्म कीड़ों का बाहर ही रोक लेते है, अन्दर नहीं जाने देते है।।

नथुनों के भीतरी पृष्ठ पर श्लेष्मिक कला (Mucous Membrane) चढ़ी रहती है। इस श्लैष्मिक कला में रक्त की कोशिकाओं का जाल फैला हुआ होता है। जब वायु नाक द्वारा फेफड़ों में जाती है तो इन रक्त कोशिकाओं में भरे हुए रक्त से गरम होकर अन्दर जाती है। अगर वायु गरम होकर न जाए और ठण्ड़ी ही चली जाए तो नसें फूल जायेगी और 'जुकाम' हो जाएगा। नथुनों की श्लेष्मिक कला में अनेक ग्रन्थियाँ (ग्लैण्ड्स) होती है जिनमें बलगम बनता है। यह बलगम नथुनों को गीला रखता है। जुकाम होने पर ये गन्थियाँ अधिक मात्रा में बलगम बनाने लगती है।

ख) भीतरी (नासा गुहा) Nosal Fossa :– नथुनों में से देखने में जो नाली जैसी चीज दिखाई देती है बस वही 'नासागुहा' है। इसके बीच में पर्दा होता है। उसके बीच के पर्दे पर श्लेष्मिक कला चढ़ी रहती है। नासागुहा में जो श्लैष्मिक कला रहती है, वही 'गन्ध' को पहचानती है। तथा वही 'घ्राण–प्रदेश' भी है। नासागुहा के प्रत्येक कोष्ठ (चैम्बर) के ऊपर वाले भाग से सूंघा जाता है तथा नीचे वाले भाग से श्वास (सांस) ग्रहण किया जाता है। वायु का अधिक भाग इसी के नीचे के भाग में होकर जाता है।

नाक के पिछले भाग का सम्बन्ध कण्ठ भाग से होता है। यही कारण है कि कभी–2 पानी पीते समय हंसी आ जाने पर जल कण्ठ से नाक में आ जाता है।

**नाक के कार्य :–**

नाक बहुत ही उपयोगी ज्ञानेन्द्रिय है। नाक की घ्राण नाड़ी द्वारा हमें गन्ध का ज्ञान होता है। यह श्वास मार्ग का बहुत ही आवश्यक भाग है। इसके नथुनों के बाल वायु की धूल, मिट्टी और सूक्ष्म कीड़ों को फेफड़ों के अन्दर जाने से रोकते है। नथुनों के भीतर भी श्लैष्मिक कला की कोशिकाएँ वायु को गरम करके फेफड़ों के अन्दर भेजती है। यदि वे ऐसा न करे तो हमें आये दिन जुकान होता रहेगा। नाक की श्लैष्मिक कला में जो श्लेष्मा तैयार होता हैं उसमें रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति होती है। नाक मानव जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी अंग है।

## कर्ण की सरंचना

प्राणियों में कान श्रवण प्रणाली का मुख्य अंग है। कान उत्तकों से निर्मित एक प्रालंब होता है जिसे बाझकर्ण या कर्णपाली कहा जाता है।

मानवीय कान के तीन भाग होते है।

क) बाह्य कर्ण

ख) मध्य कर्ण

ग) आंतरिक कर्ण

क) बाह्य कर्ण :– कर्णिपाली से आवाज की तरंगें इकट्ठी करके कान के पर्दे तक पहुचाँता है। जिससे कान के पर्दे में कम्पन होता है। हम धूल और अन्य चिपके कणों को बाह्य कान में से ही निकालते है।

ख) मध्य कान :– मध्य कान यूस्टेशियन ट्यूब द्वारा नाक की गुफा से जुड़ा रहता है। यूस्टेशिन ट्यूब को ई.एन.टी. ट्यूब भी कह सकते है। क्योंकि यह कान नाक और गले को जोड़ती है। इसके कारण मध्य कर्ण वातावरण से अचानक हुए हवा के दबाव (जैसे विस्फोट या धमाके) को झेल सकती है। क्योंकि यह दवाब ई.एन.टी. ट्यूब द्वारा नाक व गले तक पहुँचा देती है व नुकसान यह है कि ई.एन.टी. ट्यूब नाक व गले के संक्रमण को कान तक पहुंचा देती है।

**आंतरिक कर्ण :–** इसे लैबरंथ भी कहते है। आंतरिक कान या लैबरिंथ शंखनुमा सरंचना होती है। इस शंख में द्रव भरा रहता है। यह आवाज के कम्पनों को तंत्रिकाओं के संकेतों में बदल देती है। ये संकेत आठवीं मस्तिष्क तंत्रिका द्वारा दिमाग तक पहुँचाती है।

आन्तरिक कर्ण में स्थित पट्टियों की सरंचना हारमोनियम जैसे अलग–2 तरह से कम्पित होती है।

**श्रवण क्रिया :–** जो आवाज हमारे कानों तक पहुँचती है। पहले कान के पर्दो में कम्पन पैदा करती है। यह कम्पन तीन छोटी हड्डियों के द्वारा कानों के मध्य भाग (Middle Ear), हैंमर (Hammer), एनविल (Anvil) एवं परिणाम कॉकलियाँ के द्रवों में गतिमय होता है। कॉकलियाँ के अन्दर संवेदनशील कोशिकाएँ (Senstive cell) होती है, जो कि इन गति को नोट कर लेती है और न्यूटल क्रियाओं (Neutal Activity) की शुरूआत करती है जो कि ऑड़िटरी नर्व के द्वारा दिमाग तक पहुँचायी जाती है। इस प्रकार से हम सुनते है।

श्रवणीय अस्थिकाएँ :– (क) मैलीयस (ख) एनविल (ग) स्टैपीज

**शरीर की सबसे छोटी अस्थि ''स्टैपीज'' है।**

# नेत्र की सरंचना एवं कार्य

हमारी ज्ञानेन्द्रियों में आँख सबसे कोमल और अति महत्वपूर्ण अंग है। जैसा कि सर्वविदित है कि हमारे शरीर में दो आंखे (एक दांयी और एक बांयी ओर) होती है। यह भौहों के नीचे नाक के दाँये–बाँये और कर्पर के गड्डों में होती है। कर्पर के जिन गड्डों में आँखे रहती है। उनको 'अक्षिखात' अथवा 'नेत्रगुहा' (Orbital Fossa) कहते है। इसी नेत्र गुहा में आँख का गोला अर्थात् अक्षि गोलक (Eye Ball) रहता है। अक्षिगोलक के ऊपर दो पलके रहती है जो गर्द व धूल से अक्षिगोलक को बचाती रहती है। इन पलकों के आगे बाल होते है जिन्हे अक्षिलोम कहते है।

प्रत्येक आँख की बनावट कैमरा (Camera) से मिलती–जुलती है, क्योंकि जिस प्रकार कैमरे में एक लैन्स होता है ठीक उसी प्रकार आँख में भी लैन्स होता है जिसे 'स्फटिक–ताल' (Crystallice Lens) कहते है। हमारी आँख गेंद की तरह गोल होती है। इसके सामने का भाग आगे की ओर उभरा हुआ होता है ऊपर की पलक के साथ नेत्रगुहा के अगले और ऊपर वाले भाग में एक ग्रथि लगी रहती है जिसे 'अश्रुग्रन्थि' (Tear Gland) कहते है। इससे स्त्रावित होने वाले आँसू को 'नेत्रोद' या एक्वीयस ह्यूमर (Aqueous Humour) कहते है।

**दृष्टि की क्रिया विधि :–** जब किसी वस्तु पर प्रकाश की किरणें पड़ती है तो वे प्रतिबिम्बित होकर चारों और फैलती है। याद रखियें की प्रकाश की किरणें सर्वप्रथम कनीनिका (Canea) में पड़ती है। प्रकाश की किरणें कनीनिका में से होती हुई अग्रकोष्ठ में जाती है और यहाँ से पुतली में होती हुई ताल (Lens) से गुजरती है। ताल में से गुजरकर ये किरणें स्फटिक द्रव्य (Vitreous Humour) में जाती है और यहाँ पर अन्तः पटल (Retina) में पड़कर उल्टी और छोटी सी तस्वीर बनाती है।

प्रकाश की किरणें जब अन्तः पटल प्रकाश पर गिरती है तो वात–संवेदना रेटिना से दृष्टि नाड़ी (Oltic Nerve) द्वारा मस्तिष्क के पिछले भाग में जाकर दृष्टि उत्पन्न करती है।

# त्वचा की सरंचना

त्वचा में स्पर्श को ग्रहण करने वाली कुछ पतली और कुछ मोटी सूक्ष्मग्राही अंकुरिकायें होती है। इनके मूल भाग में नाड़ी की शाखायें घुसी हुई रहती है जिनसे स्पर्श का ज्ञान संवहन मस्तिष्क तक होता है। जब स्पर्श को ग्रहण करने वाली अंकुरिकाओं पर थोड़ा भी दबाव पड़ता है तो इनकी नाड़ियां, उत्तेजित हो जाती है तथा यही उत्तेजना मस्तिष्क में पहुँचकर स्पर्श की संज्ञा पैदा करती है।

उष्ण, शीत, स्पर्श और दर्द इन सबके ग्रहण करने के लिए अलग–2 चार प्रकार की स्पर्शाकुरिकायें होती है। त्वचा में संज्ञावह एवं चेष्टावह दोनों प्रकार की तन्त्रिकाएँ या नाड़ियाँ एवं उनकी तन्तुएँ (Nerve Fibers) होती है। जो विशेषकर स्वेद ग्रन्थियों आदि में दृष्टिगोचर होती है।

**त्वचा के कार्य :–**

1) त्वचा मांस आदि कोमल धातुओं की रक्षा करती है।
2) यह रोगों त्पादक जीवाणुओं, कीड़ों एक विषों को शरीर के भीतर प्रविष्ट होने से रोकती है।
3) तापक्षय को नियन्त्रित करती है।
4) त्वचा, सर्दी, गमी, कोमलता, कठोरता, पीड़ा, स्पर्शानुभव को महसूस करती है।
5) त्वचा सूर्य की किरणों से जीवनीय द्रव्य (Vitamin-D) की उत्पत्ति में सहायक होती है।

6) त्वचा के रंजक कण द्वारा सूर्य की संतप्त किरणों से शरीर के आभ्यान्तरिक अंग–प्रत्यगों की रक्षा करती है।

7) स्वेद ग्रन्थियों द्वारा पसीने के रूप में शरीर के मलों को बाहर निकालती है।

## जीभ

जीभ का मुख्य कार्य किसी वस्तु को चखकर उसके स्वाद को ज्ञात करना है। क्योंकि इसमें स्वाद के रिसेप्टर्स होते है। जीभ एक अत्यधिक गतिशील अंग है, जो स्वाद–संवेदन के अतिरिक्त चबाने निगलने तथा बोलने जैसे महत्वपूर्ण कायों को भी संपादित करती है। जीभ मुख में स्थित म्यूकस मेम्ब्रेन से पूर्णत: ढँकी हुई ऐच्छिक पेशियों से निर्मित एक संवेदांग है।

स्वस्थ अवस्था में जीभ तर एवं गुलाबी रहती है, इसकी ऊपरी सतह मखमली दिखाई पड़ती है तथा बहुत से उभारों से आच्छादित रहती है, जिन्हें अंकुरक या पैपिली कहते है। इन अंकुरकों को 'स्वाद कलिकाएं' भी कहा जाता है। मानव में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ रहती है।

### स्वाद कलिकाएँ ग्रहण करने की क्रिया विधि :–

स्वाद कलिकाएँ ही स्वाद की विशिष्ट अन्तांग है। इनकी प्रत्येक कोशिका में स्वाद–तन्त्रिका की शाखा आती है। प्रत्येक स्वाद कलिका अंकुरक (पैथिली) की सतह पर सूक्ष्म रन्ध्र से खुलती है और खाद्य पदार्थ इन रन्ध्रो में प्रवेश कर इन उभारों को अपने संस्पर्श से उद्दीप्त करते है। इनमें उत्पन्न उद्दीपन के आवेग स्वाद संवेद की तन्त्रिकाओं (VII, IX व X कपालीय तन्त्रिकाएँ) के द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्र (Taste Centre) में संचारित होते है। और वहाँ स्वाद का विश्लेषण होता है। तत्पश्चात ही हमें विभिन्न प्रकार के स्वादों का ज्ञान होता है।

## पीयूष ग्रन्थि की सरंचना एवं कार्य

☞ मानव शरीर में पीयूष ग्रन्थि एक मटर के दाने के आकार की अत: स्त्रावी ग्रन्थि है। मनुष्यों में इसका वजन 0.5 ग्राम (0.02 ओस) होता है। यह सेला टर्निका में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित होती है।

☞ पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण अत: स्त्रावी ग्रन्थि है। जिसे मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहा जाता है। क्योंकि इससे उत्पन्न हॉर्मोन्स अन्य अत: स्त्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता को उद्धीप्त करते है।

☞ पीयूष ग्रन्थि शरीर के विकास में तथा शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में सहायता करती है।

☞ पीयूष ग्रन्थि के दो खण्ड है।

(क) अग्रखण्ड

(ख) पश्च खण्ड

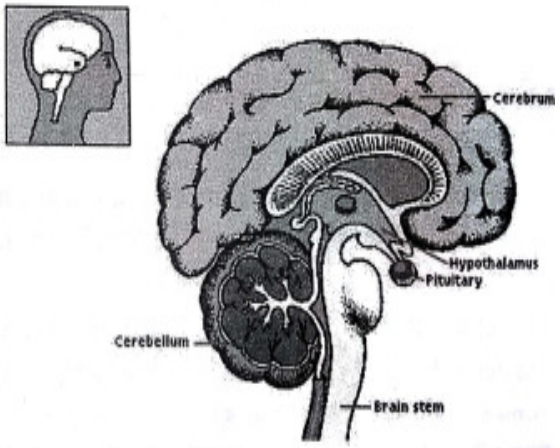

**अग्रखण्ड :–** अग्रखण्ड उपकला कोशिका का समूह है जो रक्त चैनलों से विकसित होता है। इसके विपरित पश्च खण्ड़ मस्तिष्क से सम्बन्धित होता है और तन्त्रिका तंत्र से निर्मित होता है एवं प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस से जुड़ा रहता है।

अग्रखण्ड से अलग–2 हॉर्मोस का स्त्राव होता है जो विभिन्न कार्यो के लिए उपयोगी होता है।

1. **वृद्धि हॉर्मोस :–**वृद्धि हॉर्मोस का निर्माण करता है जो वृद्धि दर को बढ़ाता है और परिपक्वता की स्थिति का निर्माण करता है।

☞ यह एक प्रोटीन पर आधारित पेप्टॉइड हार्मोन है। यह मनुष्यों और अन्य जानवरों में वृद्धि, कोशिका प्रजनन और पुन निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

☞ इसकी कमी हो जाने पर कद छोटा रह जाता है।

2) **थाइरॉइड़ उद्दीपक हॉर्मोन :–**

पीयूष ग्रन्थि द्वारा स्त्रावित यह एक महत्वपूर्ण हॉर्मोन है। थाइरॉइड़ उद्दीपक हॉर्मोन थाइरॉइड़ ग्रन्थि तक यात्रा करता है और थाइरॉइड़ ग्रन्थि को दो थाइरॉइड़ हॉर्मोन उत्पन्न करने के लिए उद्धीप्त करता है।

यह दो थाइराइड़ हार्मोन एल–थाइरॉक्सिन (L-Thyroxine T4) और ट्राईआयोड़ोथायरोनिन (Triodothyronine T3) है।

**थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के प्रभाव**

☞ उत्तकों में कमी, गलगंड (Goitre), वजन बढ़ना, मांसपेशियों में अकड़न आदि थाइरॉइड़ उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के लक्षण है।

**अधिकता होने पर :–** इस स्थिति में हाइपर थाइरॉड़िस्म नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसमें आँखे बाहर को उभर हो जाती है। वजन कम होने लगता है। व कुशिंग रोग हो जाता है।

3) **ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन :–**

यह बड़े प्रोटीन है जो एल.एच. (LH) वृषण की लेड़िग कोशिकाओं (Leyding cells) को पुरूषों में टेस्टोस्टेरोम बनाने के लिए उत्तेजित करता है तथा स्त्रियों में (Tleca cells) में वृद्धि करता है।

4) **प्रोलैक्टिन (Prolactin) :–**

इसका लक्ष्य अंग Mammary glands होते है तथा यह स्तनों को दूध उत्पादन के लिए उत्तेजित करता है।, प्रोलैक्टिन गर्भावस्था के दौरान संष्लेषण प्रदान करता है तथा भ्रूण की प्रतिरक्षा सहनशीलता में भी योगदान देता है।

5) **फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन :–**

यह पुरूषों और महिलाओं दोनों में ही बनता है।

महिलाओं में इस हॉर्मोन से अंड़ों का उत्पादन व पुरूषों में शुक्राणुओं का उत्पादन उत्तेजित होता हे।

6) **मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (MSH) :–**

यह हॉर्मोन त्वचा एवं बालों में मेलेनोसाइट द्वारा मेलेनिन के उत्पादन को उत्तेजित करता है, यह भूख एवं कामोत्तेजना पर भी प्रभाव डालता है।

## पश्चखण्ड :–

1) ऑक्सीटोसिन (Oxytocin) :–

☞ यह हॉर्मोन महिला प्रजनन में भूमिका के लिए जाना जाता है। यह प्रसव के दौरान योनि और गर्भाशय के फैलाव के समय बड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है और स्त्रावित होता है।

☞ गर्भाशय संकुचन में सहायता करता है।

2) वैसोप्रेसिन :–

वैसोप्रेसिन एक पेप्टाइड़ हॉर्मोन है जो गुर्दो (Tubules) में अणुओं के reapsorption को नियन्त्रित करता है और उत्तक पारगम्यता को बनाए रखता है।

यह समावस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और पानी, ग्लूकोज व रक्त लवण के विनियमन में भी सहायता करता है।

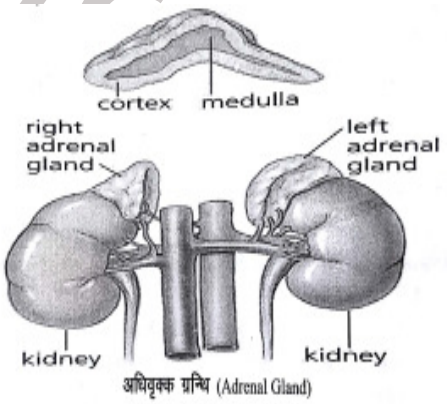

अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)

## एड्रीनल / अधिवृक्क ग्रन्थि की सरंचना

हमारे शरीर में दो अधिवृक्क ग्रन्थियाँ होती है तथा दोनों गुर्दो की चोटी पर स्थित होती है। यह कनेक्टिव टिश्यू कैप्सूल (Connective Tissue Capsule) से घिरी होती है और आंशिक रूप से वसा के एक द्वीप में दबी रहती है। अधिवृक्क ग्रन्थि को सुपरारीनल ग्रन्थि (Suprarenal Glands) भी कहा जाता है।

यह दोनों दो भागों में विभाजित होती है।

☞ पहली एड्रीनल कॉर्टेक्स जो कि बाहरी क्षेत्र होता है और दूसरे को एड्रीनल मैड्यूला कहा जाता है जो कि आंतरिक क्षेत्र है।

☞ एड्रीनल कॉर्टेक्स और एड्रीनल मेड्यूला दोनों अलग–2 कार्य करती है।

| एड्रीनल कॉर्टेक्स | | एड्रीनल मैड्यूला |
|---|---|---|
| ↓ | | ↓ |
| 1) मिनरलोकॉर्टी कोइड़ | | 1) एपीनेफ्रीन |
| ↓ | | ↓ |
| 2) ग्लूकोकॉर्टीकोइड़ | | 2) नॉरएपीनेफ्रीन |
| ↓ | | |
| 3) गोनाड़ोकॉर्टीकोइड़ | | |

## एड्रीनल कॉर्टेक्स की सरंचना एवं कार्य :–

यह वजन में 5–7 ग्राम की ग्रन्थि है जो एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 90 प्रतिशत भाग बनाती है। यह कई स्टेराइड़ हॉर्मोन उत्पन्न करती है, जिन्हें कार्टिकोस्टेरॉइड कहा जाता है।

कार्टेक्स के तीन क्षेत्र होते है :–

1) मिनरेलोकॉर्टिकॉयड़ **(Mineralocorticoid)**:– यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के बाह्य क्षेत्र की कोशिका द्वारा उत्पन्न होने वाले स्टेटॉइड़ हॉर्मोनों का एक समूह (Group) है, जो खनिजों (Minerals) की सान्द्रता को नियन्त्रित करता है। इसके अन्दर एल्ड़ोस्टेरॉन हॉर्मोन समाहित होते है जो शरीर में सोड़ियम (Na) और पोटेशियम (K) के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायता करता है। यह वृक्कीय नलिकाओं (Kidney tubule) द्वारा रक्त में सोड़ियम के पुनः अवशोषण में वृद्धि करता है। यह श्वेद ग्रन्थियों पर भी क्रिया करता है, जिससे शरीर द्रव्यों में इलैक्ट्रोलाइट्स का संतुलन सामान्य बना रहे। एल्ड़ोस्टेटॉन की अधिकता से उच्च रक्तचाप हो जाता है।

2) ग्लूकोकॉर्टिकॉयड़ **(Glucocorticoid)**:– यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के मध्य क्षेत्र में स्त्रावित होने वाला हार्मोन है। यह रक्त शर्करा की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। ये शारीरिक तथा मानसिक तनाव के प्रभावों को कम करने में सहायक होते है।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड़ के अधिक मात्रा में स्त्रावित होने के कारण 'कुसिंग्स रोग' होता है। जो प्रायः कॉर्टेक्स में ट्यूमर का कारण बनता है। शुगर होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है। यह पुरूषों में नपुंसकता का कारण भी बनता है।

3) गोनेड़ोकॉर्टिकॉयड़स :– कॉर्टेक्स के आन्तरिक क्षेत्र से स्त्रावित होने वाला हार्मोन है। इनका नियमन एड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉमोन द्वारा है। इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन, ईस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन, इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है, इनका प्रभाव वृषण (Testis) एवं डिम्बाश्य (ovum) द्वारा स्त्रावित हॉर्मोन के समान ही होता है। ये पुरूष एवं स्त्रियों के प्रजनन अंगों के कार्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा उनकी शारीरिक एवं स्वभावगत विशेषताओं को भी प्रभावित करते है।

## एड्रीनल मेडयूला :–

यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है जो पूरी तरह से कॉर्टेक्स से ढ़ँका रहता है। इससे एड्रीनलीन तथा नारएड्रीनलिन नामक दो हॉर्मोन का स्त्रावण होता है। नारएड्रीनलिन एड्रीनलीन की अपेक्षा कम प्रभावी होता है और यह बहुत कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इस हॉर्मोन का प्रभाव सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र के समान ही होता है जैसे हृद्य गति का तीव्र होना, श्वास नली का फैल जाना, रक्त वहिकाओं का संकुचन हो जाना, पसीना बढ़ जाना आदि यह हॉर्मोन किसी उद्दीयन से तुरन्त प्रतिक्रिया करते है।

### एड्रीनल के कार्य :–

1) हृदय की रक्त वाहिनियों को विस्फारित करना।
2) हृदय की धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाना।
3) श्वास नली को विस्तारित करना व श्वसन दर को बढ़ाना।
4) चयापचयी दर (Metabolic Rate) को बढ़ाना।
5) पाचन संस्थान की चिकनी पेशियों के संकुचन को रोक कर शिथिलता उत्पन्न करना।

### नॉरएड्रीनेलिन के कार्य :–

1) रक्तचाप को बढ़ाना।
2) लिपिड़ चयापचय को बढ़ाना।
3) वसा ऊतक से उन्मुक्त वासीय अम्लों को स्वतंत्र करना है।

# थाइरॉइड़ ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड़ ग्रन्थि ग्रीवा में श्वास प्रणाली के सामने निचले सर्वाइकल के स्तर पर स्थित रहती है। यह दो खण्ड़ों में विभक्त रहती है जो लेरिक्स (स्वर यंत्र) और ट्रेकिया (श्वास प्रणाल) के मध्य जोड़ के दोनों तरफ स्थित रहती है। इसका वजन सामान्य स्थिति में 25–40 ग्राम तक होता है। थाइरॉइड़ ग्रन्थि के दोनों खण्ड़ ऊतक के एक ब्रिज से जुड़े होते है, जिसे इस्थामस (Isthmus) कहते है।

**सरंचना :–** थाइरॉइड़ ग्रन्थि में बहुत सारे आपस में जुड़े फॉलिकल (Follicles) होते है। इन फॉलिकल में एक गाढ़ा चिपचिपा प्रोटीन पदार्थ भरा होता है जिसे कोलाइड़ कहते है। इस कोलाइड़ में थाइरॉइड़ हॉर्मोन संचित रहते है। थाइरॉइड़ ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं फोलीक्यूलर और पैराफोलिक्यूलर कोशिकाओं से निर्मित होती है। फोलीक्यूलर कोशिकायें (Follicular cells) थायरॉक्सिन व थायरोड़ीन का निर्माण व स्त्रावण करती है। जो कोशिकाओं में उपापच्य (Matalboliom) को बढ़ाते है। पैराफोलिक्यूलर कोशिकायें फोलिकल्स के मध्य समूह में पाई जाती है तथा केलिस्टोनिन नामक हॉर्मोन का निर्माण एवं स्त्रावण करती है।

**कार्य :–** थाइरॉइड ग्रन्थि मुख्यत: तीन हॉर्मोन का स्त्रावण करता है।

(क) T3 (ख) T4 (ग) TCT

T3 (Tri Iodeothyroxine) ट्राईआयड़ो थाइरॉक्सीन :–

1) विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करता है।
2) सामान्य उपापच्य दर को नियन्त्रित करता है।
3) कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, उपापच्य को सम्पन्न करता है।
4) शारीरिक भार को नियन्त्रित करता है।
5) मूत्र निर्माण में सहायक है।
6) कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के अन्त: ग्रहण को बढ़ाता है।
7) हृद्य गति एवं श्वसन दर को नियन्त्रित करता है।

T4 :- इसके कार्य T3 हॉर्मोन के समान ही है, परन्तु यह थाइरॉइड स्त्राव का लगभग 90 प्रतिशत होता है जबकि T3 अधिक सांद्र और अधिक सक्रिय होता है।

TCT :- यह रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को कम करता है एवं Bron Mineral Metabolism का नियन्त्रण करता है।

**थाइरॉइड़ स्त्रावण की कमी व अधिकता का शरीर पर प्रभाव :–**

**अधिकता से प्रभाव :–** हाइपर थाइरॉडिस्म :– जिसमें रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। आंखें बाहर को उभर जाती है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड़ ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

**कमी से प्रभाव :–** 'हाइपो थाइरॉडिस्म' नामक स्थित उत्पन्न हो जाती है। इस रोग में बुद्धि का ह्रास (मजाक) हो जाता है। बच्चों का विकास रूक जाता है। पेट बाहर को अधिक बढ़ जाता है। व्यस्कों में त्वचा पीली, सूखी, रूक्ष हो जाती है, वजन बढ़ जाता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है। जिससे ठण्ड़ सहन नहीं हो पाती।

# पैराथाइरॉइड़ ग्रन्थि (Parathyroid Gland)

पैराथाइरॉइड़ ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की चार छोटी–2 ग्रन्थियों का समूह है। जो थाइरॉइड़ ग्रन्थि के दोनों खण्ड़ों में दो–दो पिछली सतह में स्थित रहती है। ये लगभग 3–4 मि.मी. व्यास की होती है और **Columns** में व्यवस्थित होती है यह पीले भूरे रंग की होती है। जिन कोशिकाओं से ये बनी होती है, वे **Spherical** होती है इनका वजन 0.05 से 0.3 ग्राम तक होता है।

**कार्य :–**

यह ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचालन करती है। यह रक्त में कैल्शियम के नियन्त्रण हेतु अस्थि, वृक्क/किड़नी, आन्त पर प्रभाव डालती है।

जब रक्त में कैल्शियम की कमी होती है तो पैराथाइरॉइड़ कैल्शियम को बढ़ाने का कार्य करता है और तब अधिकता हो जाए तब उसे कम करने का कार्य करता है।

पैराथाइरॉइड़ हॉर्मोन अस्थि से कैल्शियम रक्त मे खींचता है। पैराथाइरॉइड़ हॉर्मोन किड़नी पर तीन प्रकार से असर करता है।

क) पेशाब में Ca (कैल्शियम) बहने से रोकता है।

ख) पेशाब में फॉसफोरस को बहने देता है।

ग) एक प्रकार का विटामिन 'डी' बनाता है जिसे Calcitrial कहते है।

**पैराथाइरॉइड़ ग्रन्थि से स्त्रावित होने वाला हॉर्मोन :–**

इस ग्रन्थि से पैराथोर्मोन नामक हार्मोन स्त्रावित होता है। जिसका प्रमुख कार्य कैल्शियम और फॉस्फेट के मेटाबोलिज्म को नियन्त्रित करना होता है। किड़नी में यह फास्फेट के निकलने की क्रिया को बढ़ाता है।

**अधिकता के प्रभाव :–** 'हाइपर पैराथाइरॉडिस्म' नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है। परन्तु Ca की मात्रा अधिक हो जाती है व अस्थियों में Ca की मात्रा कम हो जाती है जिससे वह छिद्रमय और भुरभुरी हो जाती है। पेशियों में स्फुर्ति कम हो जाती है। गुर्दो में पथरी बन जाती है।

**कमी से प्रभाव :–** 'हाइपोपेराथाइरिड़िस्म' नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में Ca की मात्रा कम हो जाती है। परिणामस्वरूप टिटेनी (**Tetany**) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में पेशीयों में कड़ापन और ऐठंन होती है। हृदय की गति बढ़ जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है और बुखार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और पैशाब में कमी आने लगती है।

# यौन ग्रन्थियाँ

**यौन ग्रन्थियों** का सम्बन्ध जनन (Reproduction) से होता है। इन ग्रन्थियों के अन्तर्गत पुरूष एवं स्त्री के जननागों का समावेश होता है। पुरूष में वृषण ग्रन्थियाँ (Testes) और स्त्री में डिम्बा ग्रन्थियाँ (Ovaries) जनन ग्रन्थियाँ कहलाती है।

**वृषण की सरंचना एवं कार्य :–** वृषण पुरूष की प्रजनन ग्रन्थियां है। ये ग्रन्थि शुक्राणु का उत्पादन करती है जो कि जनन के दौरान मुख्य भूमिका निभाता है। शिशनमूल के नीचे एवं जाघों के बीच में लटकने वाली त्वचा की थैली की सरंचना को वृषणकोष कहते है। इसमें टेस्टोस्टीटॉन नामक हार्मोन उत्पन्न होते है। जब शुक्राणु उत्पन्न नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप बाझंपन या बन्ध्यता (Sterility) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में रहते है। इनका तापमान शरीर के ताप से 3 $F^0$ कम होता है। यह कम तापमान शुक्राणुओं की उत्पत्ति तथा उनके जीवित रहने के लिए आवश्यक होता है।

**विशेष :–** जींस पहनने से वृषणों का ताप बढ़ जाता है जिससे शुक्राणु की उत्पति में रूकावट आनी शुरू हो जाती है। परिणामस्वरूप देश में पुरूषों में नपुंसकता बढ़ती जा रही है। हमारे देश की वेशभूषा धोती, पजामा आदि है। इसके विपरीत भारत देश के युवा विदेशी वेशभूषा 'जींस' पहनकर नपुसंकता को बढ़ावा दे रहे है।

## वृषण के हार्मोन व उनके कार्य :–

वृषण (Testes) का अंतस्त्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है। जिन्हे इन्टरस्टीशियल **(Interstitial cells)** कोशिकायें कहते है। यह कोशिकायें वृषण के सेमिनीफैरस ट्यूब्यूल्स के मध्य स्थित क्नेक्टिव उत्तकों **(Connective tissues)** में पाई जाती है। इन इंटरस्टीशियल कोशिकाओं से पुरूष सेक्स हॉर्मोन टेस्टोस्टीटोन व एंड्रोस्टीरोन स्त्रावित होते है जो कि सेकेण्ड्री सैक्सुअल कैरेक्टर्स **(Secondary tissue characters)** के एिल उत्तरदायी होते है।

### टेस्टोस्टीरोन (Testosterone)

1) सेकेण्ड्री सेक्स अंग जैसे एपीड़ीड़ाइमिस, प्रोस्टेट, ग्रन्थि, सेमिनल वैसिकल **(Seminal vesicles)** के वृद्धि एवं विकास को नियंत्रित करता है।
2) पुरूष की सैकेण्ड्री सेक्सुअल विशेषताओं जैसे दाढ़ी मूँछ घनी आना, आवाज में भारीपन, कंधों का चौड़ा, लम्बाई आदि के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।
3) सहवास उद्दीपन के लिए उत्तरदायी होता है।
4) शुक्राणुओं की परिपक्वता के लिए उत्तरदायी होता है।

### एण्ड्रोस्टीटोन (Androsterone)

यह द्वितीयक सेक्स लक्षणों को उभारने में सहायक होता है, परन्तु यह टेस्टोस्टीवेज की तुलना में कम प्रभावी रहता है।

## डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries) की सरंचना एवं कार्य :–

स्त्रियों में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती है, जो डिम्ब (Ova) एवं स्त्री हॉर्मोन (harmon) उत्पन्न एवं स्त्रावित करती है। ये बादाम के आकार की हल्के भूरे रंग की ग्रन्थियाँ है, जो उदर के निचले भाग में गर्भाशय के दोनों और ड़िग्बवाहिनिकाओं के पीछे एवं नीचे स्थित होती है। मीजोवोरियम के बॉर्डर में मोटापन डिम्बाशयी लिगामेण्ट (Ovarian Ligament) कहलाता है। जो ड़िम्बग्रन्थि से गर्भाश्य तक फैला रहता है। मीजोवेरियम में शिराऐ, धमनियाँ, लसीका वाहिकाऐं एवं तांत्रिकाये विद्यमान होती है, जो ड़िम्बा ग्रन्थि के छिद्र से होकर आती एवं जाती है।

**सरंचना :–** डिम्ब ग्रन्थियाँ विशिष्ट उपकला कोशाओं की एक परत से आच्छादित रहती है, जिसे बीज या जननित **(Germinal Layer)** परत कहा जाता है। इस परत के नीचे संयोगी ऊतक का एक पिण्ड़ होता है जिसे स्ट्रोमा कहते है।

**ड़िम्ब ग्रन्थि के हॉर्मोन एवं उनके कार्य :–** वृषण की भांति ही ड़िम्ब ग्रन्थि के अन्त: स्त्रावी भाग में तीन हॉर्मोनों का स्त्राव होता है।

A) **ईस्ट्रोजन (Estrogen) :–** ये स्टेरॉयड़ हॉर्मोन का समूह होता है। यह गर्भवती महिलाओं में Placenta के द्वारा स्त्रावित होता है।

1) यह स्त्री जनन अंग जैसे फेलोयीन टयूब, यूट्रस वेजाइना की वृद्धि जैसी सामान्य कार्यक्षमता के लिए उत्तरदायी है।

2) स्त्री द्वितीयक लक्षणों जैसे :– स्तनों का विकास, पेल्विक क्षेत्र का विकास, प्यूबिक बालों की वृद्धि, मासिक धर्म की शुरूआत आदि को नियन्त्रित करता है।

3) सहवास उद्दीपन के लिए उत्तरदायी है।

b) **प्रोजेस्ट्रॉन** (Progestrone) :– यह कॉर्पस लयूटियम द्वारा स्त्रावित होने वाला हॉर्मोन है।

1) यह गर्भावस्था के दौरान ड़िम्बोत्सर्जन की क्रिया पर अंकुश रखता है ताकि गर्भधारण की प्रक्रिया में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

2) Uterine Wall में Foetus को अवस्थित करता है।

3) Placenta Formation को सहयोग करके आगे बढ़ाता है।

4) गर्भ में विमजने के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।

5) गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिए उत्तरदायी है।

6) गर्भाशय के संकुचन को अवरूद्ध करता है ताकि गर्भस्थ शिशु पूरे विकास को प्राप्त करें अर्थात पूरी तरह निर्भाध रूप से विकसित हो सके।

c) **रिलैक्सिन हॉर्मोन** (Relaxin Harmone) :– यह हॉर्मोन गर्भाधान के अन्त में कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्त्रावित होता है। इसका कार्य पेल्विक लिगामेंट को शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

# प्रतिरक्षा तंत्र

किसी रोग, विशेष तौर पर संक्रामक रोग के प्रति प्रतिरोधक शक्ति के होने अथवा संक्रामक रोग से बचने की क्षमता को प्रतिरक्षा कहते है। यह प्रतिरक्षा या इम्यूनिटी (Immunity) शरीर की एक विशिष्ट क्षमता है जिसके कारण ही हम जीवित रह पाते है। इस क्षमता के न होने पर हमारा इस वातावरण में रह पाना अत्यन्त कठिन है।

चिकित्सा शास्त्र की वह शाखा जिसमें रोगों के प्रति रोग क्षमता या इम्यूनिटी का अध्ययन किया जाता है। रोग क्षमता विज्ञान या इम्यूनोलॉजी (Immunology) कहलाती है। प्रतिरक्षा तंत्र के अन्तर्गत वे सभी अंग आते है, जो किसी न किसी रूप में शरीर की प्रतिरक्षा में सहायक होते है।

(1) लसीका
(2) लसीका नोड़
(3) प्लीहा
(4) थाइमस ग्रन्थि
(5) यकृत ग्रन्थि

1) **लसीका** :– लसीका रक्त प्लाज्मा के समान स्वच्छ पानी जैसा द्रव होता है। जिसका संगठन अन्तरालीय द्रव के जैसा होता है। ऊतकों में चयापचय के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले कुछ व्यर्थ पदार्थ कार्बन डाई आक्साइड़, यूरिया आदि भी इसमें मिले रहते है। इसमें कोशिकाओं की पतली, छिद्रमय भितियों में प्रवेश करने वाली श्वेत रक्त कोशिकायें जिन्हें ल्यूकोसाइट्स (Leucocytes) भी कहा जाता है। लसीका ग्रन्थियों में उत्पन्न लिम्फोसाइट्स भी बड़ी लसीका वाहिकाओं में पायी जाती है।

**अन्तरालीय द्रव** :– जो कि निलयी संकुचन द्वारा उत्पन्न रक्त वाहिकाओं के भीतर रक्त के हाइड्रोस्टैटिक दाब के जल, प्रोटीन की कुछ मात्रा विशेषकर एल्ब्यूमिन एवं अन्य पदार्थ कोशिकाओं से रिसकर बाहर ऊतक कोशिकाओं के बीच के स्थान में आ जाते है वे अन्तरालीय द्रव कहलाते है।

**लसीका उत्पत्ति :–** ऊतकों का पोषण करने के उपरान्त व्यर्थ पदार्थो जैसे $Co_2$ कार्बनडाईऑक्साइड, यूरिया आदि से युक्त अन्तरालीय द्रव का अधिक भाग रक्त कोशिकाओं की भित्तियों को पार करके उनके भीतर रिसकर पहुँच जाता है, किन्तु उसका कुछ भाग रक्त कोशिकाओं में न जाकर लसीकीय कोशिकाओं में पहुँच जाता है। जो लसीका कहलाता है। और लसीकीय तन्त्र द्वारा रक्त में प्रवाहित हो जाता है।

## 2. लसीका पर्व (Lymph Nodes)

लसीका पर्व ऊतकीय पिण्ड़ है जो लसीकीय वाहिकाओं के मार्ग में एक धागे में पिरोए हुये मनके के समान सेम के बीज की आकृति (1 से 25 मि.मी. लम्बे) के होते है।

लसीका पर्व (Lymph Nodes) मुख्यतः गर्दन, बगल, छाती पेट और जांघों के बीच में अधिक संख्या में पाये जाते है। अधिकांश लसीका, रक्त प्रवाह में वापस पहुँचने के लिए कम से कम एक लिम्फ नोड़ से होकर गुजरता है।

**सरंचना :–**

लिम्फ पर्व चारों और से तन्तुमय संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल से आच्छादित होती है। कैप्सूल से लिम्फ नोड़ के केन्द्र की ओर संयोगी ऊतक के प्रवर्ध जिन्हें तन्तुबंध कहा जाता है। अन्दर की और निकले होते है, जिससे पर्व कई भागों में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक भाग का बाह्य भाग लिम्फ पर्व के कॉर्टेक्स (Cortex) जिसमें लिम्फोसाइट्स घने गुच्छो में विद्यमान रहती है, जिन्हें लिम्फ नोड्यूल्स कहते है। लिम्फ नोड्स प्रतिदिन लगभग 10 बीलियन लिम्फोसाइट्स उत्पन्न करते है।

**लसीका पर्व के कार्य :–**

1) लसीका पर्व अथवा लिम्फ नोड्स छलनी (Filter) का कार्य करते है। इन नोड्स द्वारा लसीका छन जाती है। जिससे यह बाह्य हानिकारक पदार्थ एवं रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु आदि को रोक लेती है।
2) लिम्फ नोड्स में बी. लिम्फोसाइटस की उत्पत्ति होती है। तथा इनमें वृहत्भक्षक कोशिकायें है। विद्यमान रहती है। जिनसे उत्पन्न एण्टीबॉड़ीज एवं एन्टीटॉक्सिन्स द्वारा रोगोत्पादक जीवाणु नष्ट हो जाते है।

## 3. प्लीहा :– (Spleen)

उदरीय गुदा में बाई पसलियों के नीचे एवं आमाशय के बाहरी किनारे पर स्थित नालिकाविहीन ग्रन्थि के रूप में कार्य करने वाला यह अंग प्रतिरक्षा तंत्र की एक मजबूत कड़ी है। इसका आकार एवं आकृति लगभग एक बन्द मुट्ठी के समान होती है। यह लगभग 12 से.मी. लम्बी, 7 से.मी. चौड़ी तथा 2.5 से.मी. मोटी होती है तथा वजन में लगभग 200 ग्राम होती है। रंग गहरा बैंगनी होता है।

**प्लीहा के कार्य :–**

1) प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना एवं भक्षक कोशिकाओं लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण करना है।
2) प्लीहा में उपस्थित प्रचुर मात्रा में विद्यमान भक्षक कोशिकाये (Marcophages) रक्त से मृत लाल कोशिकाओं को एवं रक्त प्लेटलेट्स, सूक्ष्म जीवाणुओं तथा अन्य कोशिकीय विजातियों को हटाने में सहायता प्रदान करती है।
3) प्लीहा के रक्त में विद्यमान एण्टीजन्स, लिम्फोसाइट्स के क्रियाशील बनकर कोशिकाओं में विकसित होते है तथा एण्टीबॉड़ीज का निर्माण करते है।
4) गर्भावस्था में गर्भस्थ भ्रूण में प्लीहा लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है।
5) प्लीहा रक्त के भण्डार का काम करती है।

**थाइमस ग्रन्थि :–** यह लसिका ऊतक से निर्मित गुलाबी भूरे रंग की एक नलिकाविहीन ग्रन्थि है। यह हृदय एवं इसकी मुख्य रक्त वहिकाओं के ऊपर विद्यमान रहती है।

**कार्य :–** भूर्णावस्था में थाइमस ग्रन्थि लिम्फोसाइट्स का निर्माण करती है यह एण्टीबॉड़ीज बनाने में सहायता प्रदान करती है। जन्म के समय यह ग्रन्थि बड़ी होती है। लगभग 12 से 15 ग्राम तक पायी गई है। युवावस्था में यह मात्र सूत्र के समान रह जाती है।

थाइमस ग्रन्थि से स्त्रावित स्त्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पड़ता है। यह जननेन्द्रियों के स्त्राव को यौवनारम्भ तक नियन्त्रित करती है। यह अस्थियों के विकास पर भी नियन्त्रण रखती है।

## यकृत (Liver)

यकृत शरीर की सबसे बड़ी डेढ कि.ग्रा. तक वजन की ग्रन्थि होती है। यह उदर गुदा के ऊपरी दाहिने भाग में स्थित होता है। यह डायाफ्राम के नीचे तथा पूरे दाहिने हाइपोकोण्ड्रियम को घेरे रहती है। यकृत की ऊपरी सतह उत्तल होती है एवं निचली सतह अवतल होती हैं। इसके नीचे आमाशय, पक्वाशय का प्रथम भाग तथा आंत का दाहिनी ऊपरी भाग स्थित होता है। यकृत के किनारों को यदि देखें तो इसका बायां किनारा कुछ नुकीला तथा दायां किनारा कुन्द (Blunt) होता है।

**सरंचना :–**

यकृत का दायां खण्ड बायें खण्ड की तुलना में छः गुना तक बड़ा पाया जाता है। यकृत का दायां खण्ड़ दो खण्ड़ों में विभाजित रहता है। एक ऊपर का आयताकार खण्ड़ तथा दूसरा नीचे का पुच्छल खण्ड़ होता है। आयताकार एवं पुच्छल खण्ड़ों के बीच एक अनुप्रस्थ विदर अथवा दरार होती है। जिसे पोर्टा हिपेटिस या यकृत द्वार कहते है। इसमें से होकर यकृत में कई वाहिकाये, तंत्रिकाओं, लसीका व वहिनियां एवं वाहिकाओं का आना जाना होता है।

1) **यकृत धमनी** (Hepatic Artery)

यह धमनी यकृत में शुद्ध रक्त पहुँचाती है। यकृत में पहुँचने वाले रक्त का लगभग 20 प्रतिशत इसी के द्वारा पहुँचाता है।

2) **पोर्टल शिरा** (Portal Vein)

यह आमाशय, छोटी एवं बड़ी आँत, अग्नाशय और प्लीहा से रक्त लाकर यकृत में पहुँचाती है। शेष 80 प्रतिशत रक्त इसी के द्वारा यकृत में पहुँचाता है। इस रक्त में छोटी आँत द्वारा अवशोषित पोषक तत्व विद्यमान रहते है।

3) **यकृत शिरा** (Hepatic vein)

यह यकृत में आये हुए रक्त को रक्त महाशिरा में पहुँचाने का कार्य करती है।

यकृत के खण्ड़ बहुत छोटे–2 खण्ड़कों से मिलकर बने होते है, जो पंचकोणीय या षट्कोणीय आकृति के होते है। अधिकांश खण्ड़क लगभग 1 मी.मी. डायामीटर के होते है और उनमें केन्द्रीय शिरा रहती है। प्रत्येक खण्ड़क के कोने में एक प्रतिहारी क्षेत्र होता है, जो पोर्टल शिरा, यकृत धमनी, पित्त वाहक एवं तन्त्रिका की शाखाओं से मिलकर बना होता है।

**कार्य :–**

यकृत सुरक्षात्मक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अगंक है। यह मेटाबोलिक, संग्राहक एवं स्त्रावी दृष्टिकोण से सभी

तरह से महत्वपूर्ण कार्य करता है।

चयापचयी कार्य (Metabolic Functions)

1) कार्बनिक यौगिकों से एमीनो एसिड़ को अलग करता है।
2) ऊतक कोशिकाओं से यूरिया का निर्माण एवं प्रोटीन के मेटाबोलिज्म से उत्पन्न एमीनो एसिड़ को यूरिया में बदलता है।
3) वसीय अम्लों का ऑक्सीकरण करता है।
4) प्रतिरक्षा तंत्र में सम्मिलित यह अंग रक्त की मृत लाल कोशिकाओं को रक्त से अलग कर देता है एवं हिमेटिन नामक लौह तत्व को संचित कर लेता है।
5) औषधियों एवं विषैले पदार्थो का निर्विषीकरण कर शरीर की रक्षा करता है।
6) एण्टीबॉड़ीज एवं एण्टीटॉक्सिन्स का निर्माण करता है।
7) यह शरीर का तापक्रम बनाये रखता है जोकि उपापचय अथवा चपापचय के लिए अति आवश्यक तथ्य है।

संग्रही कार्य (Storage Function) :–

1) यह ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रखता है एवं आवश्यकतानुसार पुनः ग्लूकोज में भी परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।
2) विटामिन A, D, E, K जो कि वसा में घुलनशील है, को संचित रखता है।
3) प्रोटीन के सरल उत्पाद एमीनो एसिड़ को संचित रखता है।
4) विटामिन $B_{12}$ जो कि एण्टी एनिमिन विटामिन है को संचित रखता है।

स्त्रावी कार्य :–

1) पित्त का स्त्रावण करता है जिससे वसा का पाचन एवं अवशोषण करने में मदद करता है।
2) पित्त का स्त्रावण रासायनिक, हार्मोनल अथवा तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता से परिवर्तित भी हो जाता है परन्तु पित्त पाचन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण द्रव है। पाचन ठीक होने पर ही शरीर समय पर एवं सही मात्रा में आवश्यक पोषक प्राप्त कर सुचारू रूप से अपना कार्य कर पायेगा।

## अस्थि मज्जा (Bone Marrow)

अस्थियों में पाया जाने वाला एक विशेष लचीला एवं वसा युक्त ऊतक है। यह शरीर की कुछ बड़ी अस्थियों में पाया जाता है। यह बड़ी अस्थियाँ खोपड़ी, उरोस्थि, पसली, श्रोणीय (Pelvis), उर्वस्थि (Femur) अस्थियाँ है। वयस्कों में पूरे शरीर भार का लगभग चार प्रतिशत भार अस्थि मज्जा का होता है। इसका वजन लगभग 2.6 कि.ग्रा. तक होता है।

अस्थि मज्जा मुख्यतः दो प्रकार की होती है।

(क) लाल मज्जा (ख) पीली मज्जा

क) **लाल मज्जा** (Red Marrow) :– लाल मज्जा में लाल हीमेटोपोथटिक उत्तक होते है। लाल मज्जा में लाल कोशिकाये, अधिकतर श्वेत रक्त कोशिकायें एवं प्लेटलेट्स उत्पन्न होते है। जन्म के समय सम्पूर्ण मज्जा लाल होती है। यह मुख्यतः फ्लैट अस्थियों जैसो कूल्हे की हड्डी (Pip bone), छाती की हड्डी, कशेरूका में पायी जाती है। लम्बी व बड़ी हड्डियों जैसे ऊर्वस्थि और प्रगण्ड़िका के एपीफीसल अंत में स्थित स्पोजीं तत्व में भी लाल मज्जा पाई जाती है। लाल मज्जा में बहुत सी रक्त वाहिकायें और कोशिकायें पाई जाती है।

ख) **पीली मज्जा (Yellow Narrow) :–**

पीली मज्जा में मुख्यत: वसा कोशिकायें होती है। इसमें श्वेत रक्त कोशिकाओं का एक भाग उत्पन्न होता है। पीली मज्जा लम्बी व बड़ी हड्डियों के मध्य भाग के खोखले हिस्से में पायी जाती है। बहुत अधिक खून बहने की स्थिति में आवश्यकता पड़ने पर पीली मज्जा लाल मज्जा में परिवर्तित हो सकती है। ताकि नई रक्त कोशिकाओं का निर्माण हो सके।

## स्ट्रोमा (Stroma)

अस्थि मज्जा का स्ट्रोमा, रक्त कोशिकाओं के निर्माण की प्रक्रिया में सीधे शामिल नहीं होता। पीली मज्जा अधिकरत इस स्ट्रोमा का हिस्सा होती है। कुछ कोशिकाये जैसे फाइब्रोब्लास्ट, मैक्रोफेज, एडिपोसाइट, आस्टियोब्लास्ट आदि कोशिकाये अस्थि मज्जा का गठन करती है।

## अस्थि मज्जा अवशेष (Bone Marrow Barrier)

अस्थि मज्जा में एक अवरोध (Barrier) भी पाया जाता है। जिसका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह अवरोध अपरिपक्व कोशिकाओं को मज्जा से बाहर जाने से रोकता है। परिपक्व कोशिकाओं में ही मैम्ब्रेन प्रोटीन होते है। जो रक्त वाहिकाओं से कोशिकाओं को सलंग्न कर बाहर निकालने में सहायता करते है।

## प्रतिरक्षा तंत्र के कार्य :–

- ☞ मानव शरीर लगातार ऐसी बाहरी तत्वों से लड़ता रहता है जो शरीर के लिये अहितकर है तथा शरीर को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहते है। इन बाहरी तत्वों में बैक्टीरिया (Bacteria), वाइरस, टोक्सिन, फफूंद व परजीवी शामिल है। यह तत्व अपने उत्पन्न होने की सही परिस्थिति में शरीर पर हमला कर शरीर को कमजोर बना देते है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर रोगों से ग्रसित हो जाता है। अत: प्रतिरक्षा प्रणाली का मुख्य कार्य हमारे शरीर में ऐसी सेना का निर्माण करना है जो कुछ बाहरी तत्वों से हमारी शरीर की रक्षा कर सके।
- ☞ प्रतिरक्षा प्रणाली अत्यन्त जटिल प्रणाली हैं यह ऐसे लाखों बाहरी तत्वों की पहचान कर सकती है जो शरीर को नुकसान पहुँचा सकते है।
- ☞ प्रतिरक्षा प्रणाली की सफलता का रहस्य एक व्यापक और गतिशील संचार प्रक्रिया है जिसमें लाखों कोशिकाएं आपस में संगठित रहती है और एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक संदेश भेजती रहती है।
- ☞ प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाओं को जैसे ही बाहरी तत्व के शरीर में घुसने की आहट होती है। यह तुरंत ऐसी शक्तिशाली रसायनों का निर्माण करने लगती है जो कि उन तत्वों से लड़ने में सक्षम हो।

## सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता :–

सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जन्मजात होती है तथा सूक्ष्मजीवों के प्रति स्वत: ही सुरक्षा प्रदान करती है। सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता बाहरी तत्वों से लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहती है। इसके लिए उसे किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिस किसी तत्व से शरीर को क्षति पहुँच रही होती है। उस पर यह तुरन्त आक्रमण कर उसे नष्ट कर देती है।

## शारीरिक सीमाये (Physical Barriers) :–

**त्वचा :–** त्वचा में बहुत सी मृत कोशिकाएँ होती है जो जीवाणुओं को शरीर में जाने से रोकती है।

त्वचा के अपने स्वस्थ जीवाणु होते है, जो नुकसान पहुँचाने वाले जीवाणुओं से लड़कर उन्हें बढ़ने से रोकते है। त्वचा में स्वेद ग्रन्थि व वसा ग्रन्थि होती है उनके द्वारा होने वाले स्त्राव अम्लीय (गाढा) और सीबम (तैलीय) जीवाणुओं के विकास की दर में रूकावट उत्पन्न करते है।

**फेफड़े (Lungs) :–** फेफड़े भी जीवाणुओं से एक सुरक्षात्मक कवच का कार्य करते है। वायु मार्ग से आने वाले धूल–मिट्टी, जीवाणु आदि फेफड़े के म्यूकस से चिपक जाते है तथा एक एंजाइम लाइसोजाइम जोकि म्यूकस

में पाया जाता है इन जीवाणुओं को पचा लेता है तथा उनके अवशेषों को वायुमार्ग से बाहर फैंक देता है।

**आँखे** (Eyes) :– आँखों से निकलने वाले आँसू भी जीवाणुओं के लिए अवरोध का कार्य करते है। पहले यह जीवाणुओं को बहा देते है। दूसरा इनमें भी एंजाइम लाइसोजाइम होता है जो जीवाणुओं को पचा कर अवशेषों को बाहर फेंक देता है।

**मुँह :–**

हमारे मुँह में बहुत से हानिकारक जीवाणु होते है जोकि टूथ ड़िके (Tooth Decay) का कारण बनते है। मुँह में लार की उपस्थिति के कारण यह जीवाणु पनप नहीं पाते। लार के साथ जीवाणु बह जाता है और साथ ही खाद्य कण भी बह जाते है जोकि जीवाणुओं का भोजन है। लार में लाइजोजाइम एन्जाइम व अन्य एंजाइम होते है जो जीवाणुओं को नष्ट करने में सहायक है। लार में बहुत सी एंटीबाड़ी भी पायी जाती है जो संक्रामक कणों की पहचान कर उन्हें नष्ट कर देती है।

**आमाशय** :– आमाशय में उच्च अम्लीय वातावरण के कारण जीवाणु स्वतः ही नष्ट हो जाते है। अगर कोई जीवाणु आमाशय में चला ही गया तो वह किसी अन्य पदार्थ की तरह ही एन्जाइम्स द्वारा पचा लिया जाता है।

**मूत्र मार्ग** :– स्वेद की भांति मूत्र भी अम्लीय होता है तथा जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है। यह मूत्रमार्गीय संक्रमण को होने से रोकता है।

**रक्त की प्रतिरक्षा प्रक्रिया :–**

A) **कॉम्प्लीमेन्ट कैसकेड :–**

यह प्रोटीन द्वारा निर्मित एक प्रणाली है। सारे कॉम्प्लीमेन्ट प्रोटीन जिगर द्वारा ही स्त्रावित होते है। तथा रक्त के प्लाज्मा प्रोटीन में भी पाये जाते है। यह कॉम्प्लीमेंट प्रोटीन कुछ ऐसे पदार्थो को पहचानने में सक्षम होते है जो केवल हानिकारक जीवाणुओं में ही पाये जाते है। जीवाणुओं का पता चलते ही यह जीवाणु की दीवार में छेद कर उन्हें फटने पर मजबूर कर देते है। यह फैगोसाइट्स (Phagocytes) को भी जीवाणुओं पर आक्रमण करने के लिए संकेत भेजते है।

B) **प्राकृतिक किलर कोशिकाये** (Natural Killer Cells) :–

प्राकृतिक किलर कोशिकायें बोनमैरों **(Bone marrow)** से उत्पन्न होती है। यह कोशिकायें शरीर की उन कोशिकाओं को नष्ट करती है जो जीवाणुओं द्वारा संक्रमित हो चुकी है। यह कैंसर और ट्यूमर कोशिकाओं की पहचान करने में सक्षम होती है।

C) **सूजन :–**

जब भी शरीर में ऊतकों को किसी प्रकार की क्षति पहुँचती है तो शरीर के ऊतकों से ऐसे रासायनिक द्रव्य निकलते है जो सूजन उत्पन्न करते है।

सूजन के कारण :–

(क) स्थानीय रक्त प्रवाह बढ़ना।

(ख) रक्त वाहिकाओं से पानी एवं प्रोटीन का रिसाव

(ग) दर्द रिसेप्टर्स में उत्तेजना

D) **ज्वर :–**

यह शरीर की एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है, जब फेगोसाइट्स जीवाणुओं को नष्ट कर रहे होते हैं शरीर में और जीवाणुओं का गुणन न हो इसलिए शरीर के तापमान को बढ़ाकर यह स्थिति नियंत्रित की जा सकती है।

## अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता (Acquired Immunity)

अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश के उपरान्त क्रियान्वित होती है। यह क्षमता जीवाणुओं को पहचानने के बाद ही अपना कार्य शुरू करती है। यह पहले से किसी भी प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं होती है। एक बार जीवाणुओं के प्रति प्रतिक्रिया करने के बाद अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली शरीर की रक्षा के लिए रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं का निर्माण तीव्र गति से करने लगती है।

अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली में मुख्य रूप से दो कोशिकाये : 'बी कोशिकाये' व 'टी कोशिकायें' शरीर की रक्षात्मक प्रक्रिया में कार्य करती है। सहज रोग प्रतिरोधक प्रणाली की अपेक्षा अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली को पहले यह जानना आवश्यक होता है कि किस तरह के जीवाणु ने शरीर पर आक्रमण किया है।

## एण्टीबॉडी (Antibody)

- ☞ एण्टीबॉड़ी एक प्रोटीन पदार्थ होता है जो विशिष्ट रूप से किसी एण्टीजन को बाँधने की प्रतिक्रिया में चिम्फोसाइटस द्वारा उत्पन्न होता है।
- ☞ यह संक्रमित जीवाणु को लक्ष्य बनाता है।
- ☞ यह प्रतिरक्षक कोशिकाओं को अलग करता है।
- ☞ यह टॉक्सिन को न्यूट्रेलाइज (Neutralize) करता है।
- ☞ यह संचलन से बाहरी एण्टीजन को हटाता है।
- ☞ यह उन कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है जो बाहरी तत्व खा सके।
- ☞ एण्टीबॉड़ीज पूर्व में हुए जीवाणुज, विषाणुज, टीकाकरण अथवा गर्भाशय में माता से शिशु में स्थानान्तरित होने के परिणामस्वरूप पायी जाती है।
- ☞ किसी ज्ञात एण्टीजन उत्तेजन के अभाव में भी एण्टीबॉड़ी उत्पन्न हो सकती है।
- ☞ सभी एण्टीबाड़ीज प्लाज्मा प्रोटीनों के एक विशेष वर्ग इग्युनोग्लोबिन की होती है। मानव व्यस्क में समान्यत: चार प्रकार की इम्यूनोग्लोबिन पाई जाती है जिन्हें संक्षेप में Ig कहा जाता है।

### A) इम्यूनोग्लोबिन जी (IgG) :–

यह सबसे अधिक पाई जाने वाली और प्रमुख इम्यूनोग्लोबिन है। यह प्रतिरक्षा तंत्र की बहुत सारी कोशिकाओं से सम्पर्क करने में सक्षम होती है इसलिए यह बाहरी तत्वों को पहचानते ही उन पर आक्रमण करने के लिए कोशिकाओं को उद्दीप्त कर सकती है।

यह प्रसव से पूर्व प्लेसेण्टा (Placenta) से होकर शिशु में पहुँच जाती हैं और उसमें उन बीमारियों का सामना करने के लिए थोड़ी सुरक्षा प्रदान करती है जो उसे जन्म के बाद हो सकती है।

### B) इम्यूनोग्लोबिन ए (IgA) :–

यह बहिस्त्रावी ग्रन्थियों के स्त्रावों जैसे दूध, श्वसनीय पथ, आंत की श्लेष्मा तथा आंसुओं आदि में पाई जाने वाली इम्यूनोग्लोबिन है जो श्लेष्मिक कला की सतह की जीवाणुओं एवं विषाणुओं के संक्रमण से रक्षा करती है। यह दूसरी सबसे अधिक पाई जाने वाली इग्यूनोग्लोबिन है।

### C) इम्यूनोग्लोबिन एम (IgM) :–

यह प्राय: प्रत्येक रोगक्षम अनुक्रिया में संक्रमण के प्रारम्भिक काल में बनने वाली इम्यूनोग्लोबिन है। सूक्ष्माणु के प्रारम्भिक सम्पर्क से सबसे पहले IgM एण्टीबॉड़ी ही बनती है।

D) इम्यूनोग्लोबिन ई (IgE) :–

यह आकार में सबसे बड़ी इम्यूनोग्लोबिन है पर स्वस्थ मनुष्य के शरीर में यह बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। परजीवी संक्रमण के दौरान IgE के स्तर में वृद्धि हो जाती है। इसका स्तर उस अवस्था में भी बड़ा होता है जब कोई एलर्जी हो जाती है। IgE की अधिक वृद्धि के कारण हेफीवर (Hayfever) की स्थिति बन जाती है।

## एण्टीजन्स :–

शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला या उसमें उत्पन्न होने वाला ऐसा पदार्थ जो प्रतिपिण्ड़ या एण्टीबॉड़ी के बनने को प्रेरित करता है, जो विशेष रूप से उसी के साथ प्रतिक्रिया करता है, एण्टीजन कहलाता है। एण्टीजन–एण्टीबॉड़ी प्रतिक्रिया इम्यूनिटी का आधार होती है। एण्टीजन प्राय: प्रोटीन होते है। जो वैक्सीन के रूप में इन्जैक्शन द्वारा शरीर में पहुँचाये जाते है वे कृत्रिम एण्टीजन होते है।

धन्यवाद।

शुभम बरवाल